लघु शोध-प्रबंध

# हिन्दी लघु पत्रिका का आंदोलन (सन् ६० से ८० तक)
## लघु शोध के लिए प्रस्तुत प्रबंध

शोधकर्त्री :
**संध्या चौधरी**

1985

शोध-निर्देशक :
**डा० केदारनाथ सिंह**
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा-संस्थान
ज. ने. वि.
नई दिल्ली

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

Gram : JAYENU

Telephone : 652282
652114

New Mehrauli Road,
NEW DELHI-110067.

दिनांक : 5, जनवरी 1985

## प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री संध्या चौधरी द्वारा प्रस्तुत 'हिन्दी लघु-पत्रिका आंदोलन सन् 1960 से 1980 तक' शीर्षक लघु-शोध-प्रबंध में प्रयुक्त सामग्री का जहां तक मेरी जानकारी है, इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य किसी विश्वविद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है।

(नामवर सिंह)
अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

(केदार नाथ सिंह)
शोध-निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

'तिजरा सूची'

भूमिका

प्रथम अध्याय — 1 - 24
लघु पत्रिका : आंदोलन रूप में आरंभ

द्वितीय अध्याय - 25 - 44
लघु पत्रिका आंदोलन (सन् '60 से '70 तक)

तृतीय अध्याय - 45 - 63
लघु पत्रिका आंदोलन (सन् '70 से '80 तक)

उपसंहार - 64 - 86
लघु पत्रिकाओं का साहित्यिक योगदान

लघु पत्रिकाओं की नाम सूची - 87 - 100

परिशिष्ट - 101 - 104

हिंदी साहित्य के पिछले दशकों के विकास का यदि अध्ययन करना हो तो हमें लघु पत्रिकाओं का अध्ययन करना होगा । लघु पत्रिकाओं के माध्यम से अनेक साहित्यिक आंदोलन का प्रचार और प्रसार हुआ है, श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाएं प्रकाश में आई । किंतु, पत्रकारिता के विस्तृत क्षेत्र में लघु पत्रिका की पहचान कर पाना दुष्कर कार्य है । लघु पत्रिका की पहचान क्या है ? यदि इस प्रश्न पर विचार किया जाय तो एक लंबी सूची तैयार हो सकती है कि -- लघु पत्रिका वह होती है जो सीमित पूंजी, सीमित साधनों में, प्रकाशित हो निःस्वार्थ साहित्य-सेवा करती है तथा व्यवस्था के सामंती पूंजीवादी मूल्यों का विरोध कर, प्रगतिशील भूमिका अदा करती है । सीमित पूंजी के कारण प्रायः उनका जीवन-संघर्ष दयनीय होता है और अधिकांश पत्रिकाएं अल्पकाल में ही मृत्यु की गर्त में खो जाती है । पत्रिकाओं का संघर्ष कुछ व्यवस्था द्वारा भी बढ़ाया जाता है, इनके अस्तित्व व प्रभाव को समाप्त करने के लिए पत्रकारिता का बड़े पैमाने पर व्यवसायीकरण करके ।

यहां ये भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि लघु पत्रिकाएं अनिवार्य रूप से 'साहित्यिक पत्रिका' होती है, यद्यपि इस कलेवर की पत्रिकाएं विकित्सा विज्ञान तथा धर्म संबंधी ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए भी देखी गयी है । किंतु, यहां लघु पत्रिका से हमारा अभिप्राय सिर्फ 'साहित्यिक लघु पत्रिका' से है । यह भी प्रश्न उठ सकता है कि इन लघु पत्रिकाओं में अपने जन्म से लेकर आज तक भी साहित्येतर विषय यथा राजनीति, सामाजिक समस्याओं, धर्म का औचित्य आदि अनेक मुद्दों पर भी विचार-विमर्श होता रहा है, फिर इन्हें विशुद्ध रूप से साहित्यिक कैसा कहा जा सकता है ? तो इसका उत्तर सिर्फ यही हो सकता है कि जनवादी और प्रगतिशील पत्रिकाओं ने साहित्य को कभी भी स्वायत्त नहीं माना । साहित्य और साहित्यकार को समाज से इतर नहीं माना । न केवल इतना ही, बल्कि ऐसा माननेवालों का संगठित विरोध भी किया ।

पत्रकारिता की इस लंबी परंपरा में से -- जनवादी व प्रगतिशील पत्रिकाओं को अलग करने का क्या मापदंड हो सकता है ? या प्रगतिशीलता की क्या परिभाषा दी जा

सकती है ? इसका उत्तर सव्यसाची के शब्दों में यूं दिया जा सकता है कि समाज के विकास को अवरुद्ध करनेवाली शक्तियों का विरोध करना ही प्रगतिशीलता है ।[1]

'कभी दुनिया में दास प्रथा थी जो सामाजिक विकास के मार्ग को अवरुद्ध कर रही थी ।। उन दिनों दासोन्मुख दास प्रथा के विरुद्ध उदीयमान सामंती तत्वों का समर्थन करना प्रगतिशीलता थी । कालांतर में ये सामंती संबंध भी समाज की प्रगति में ~~ये सामंती संबंध भी समाज की प्रगति में~~ बाधा डालने लगे । अतः इनके विरुद्ध आज मरणासन्न पूंजीवाद संसार को आर्थिक संकट और युद्ध की आग में झोंक रहा है, अतः इसके विरुद्ध विकासोन्मुख समाजवादी शक्तियों का समर्थन करना ही प्रगतिशील हो सकती है ।

उदीयमान पूंजीवादी शक्तियों का समर्थन प्रगतिशीलता हो गई।

किसी समय ब्रिटिश शासन हमारी प्रगति में बाधक था । अतः विदेशी सत्ता का विरोध ही प्रगतिशीलता थी । उन दिनों भारतेंदु हरिश्चंद्र हरिश्चंद्र का सृजन प्रगतिशील लेखन था । आज मरणासन्न सामंती व्यवस्था और इजारेदारी में परिवर्तित पूंजीवादी प्रणाली का गठबंधन हमारे देश को गरीबी और बेरोजगारी और शोषण-उत्पीड़न का अभिशाप देकर समाज के विकास को अवरुद्ध कर रहा है अतः इस गठबंधन के विरुद्ध जनवादी शक्तियों के समर्थन को ही प्रगतिशील कहा जा सकता है । हमारे देश का शासक शासक वर्ग इसी सामंती पूंजीवादी गठबंधन के हितों का प्रतिनिधित्व करता है, अतः इस सत्ता का समर्थन प्रगतिशीलता नहीं हो सकता।/1

इसी कारण सभी प्रगतिशील-जनवादी लघु-पत्रिकाओं का -- व्यवस्था विरोध का स्वर एक है । इस व्यवस्था के चरित्र का तथा इसके पतनशील मूल्यों का विश्लेषण प्रायः सभी लघु पत्रिकाएं करती हैं ।

व्यवस्था की समर्थक पत्रिकाओं में ऐसी पत्रिकाएं ही अधिक है जो या तो सरकारी संस्थानों द्वारा निकाली जा रही है या उद्योगपतियों की बड़ी पूंजी के बल पर प्रकाशित हो रही है । इन पत्रिकाओं के स्वार्थ व्यवस्था से जुड़े हुए है अतः इसके लिएवे मजबूर हैं अन्यथा लघु पत्रिकाओं की ताकत को यह पत्रिकाएं भी पहचानती है । इसी कारण इनका भरसक प्रयास होता है किसी प्रकार भी वे लघु पत्रिकाओं के प्रभाव को कम

---

1. हिंदी साहित्य में प्रगतिशील लेखन-सव्यसाची, प्रारंभ 73, पृ० 74

कर सके । व्यवस्था तथा उसके समर्थक पत्रकारिता को अधिकाधिक व्यावसायिक बना कर हर संभव प्रयत्न करते है । पत्रकारिता मे व्यावसायिकता की प्रवृत्ति का प्रवेश आज कोई नया नहीं है 1940 के बाद ही व्यावसायिकता का पत्रकारिता के साथ चोली-दामन का रिश्ता कायम हुआ, जब धंधों में अपनी पूंजी लगानेवाले पत्रकारिता की ओर लपके ।(नागार्जुन के अनुसार) द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में फौज के लिए पत्रों और पत्रिकाओं की व्यापक खरीदारी शुरू हुई तो जाने-माने व्यावसायिक प्रतिष्ठान इस ओर मुड़े ।'§1§

पत्रकारित मे -- व्यावसायिक या प्रतिष्ठानी पत्रिकाएं, लघु पत्रिकाओं के अतिरिक्त एक और नयी प्रवृत्ति उभरी है जिन्हें छद्म या व्यवसायपंथी लघु पत्रिका कहा जाता है, जिनका उद्देश्य व्यवसायिक होता है और स्वरूप लघु पत्रिका का । व्यावासयिकता की इस प्रवृत्ति के प्रति लघु पत्रिकाओं का रुख बहुत आक्रामक है । वे हर स्तर पर इसका विरोध करने का प्रयास करते है । कुछ पत्रिकाएं विज्ञापन न छापकर, कुछ चिकने कागज और रंगीन तस्वीरों का बहिष्कार करके तो कुछ पाठकों से इस प्रकार के प्रकार के आग्रह करके -- 'लघु पत्रिका खरीदकर पढ़े और व्यावसायिक मांग करे §2§ अपना शेष प्रकट करती है । 'सनीचर' मे आक्रामक तेवर उसकी 'नीतियों' मे मिलते है -- "पूंजीवादी, प्रतिक्रियावादी और अवसरवादी लेखकों का मंच 'सनीचर' नहीं हो सकता । 'सनीचर' दलबंदी और जातिवाद को फूटी आंखों नहीं देखता । 'सनीचर', मुखौटाधारियों का दुश्मन है । सनीचर, पूंजीवादी ढांचे की सुरक्षा में किसी भी कलात्मक उपलब्धि को स्वीकार नहीं करता । सनीचर, नवलेखन का पक्षधर है, किंतु नवलेखन की गफलत को बर्दाश्त नहीं करता।" §3§

लघु पत्रिकाओं मे संगठन का अभाव बना हुआ है । सभी पत्रिकाएं अपने स्तर पर व्यवस्था, व्यावसायिकता का विरोध करती हुई लघु पत्रिका का लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास कर रही हैं, किंतु संगठन के अभाव में आंदोलन के ये सूत्र बिखरे पड़े है ।

==========

1. सनीचर, मई 69 पृ0 10
2. भंगिमा
3. सनीचर, मई 69

आर्थिक तथा अन्य सहयोग के अभाव में इनका क्षेत्र तथा पाठक ही सीमित नहीं है जीवन काल भी गिने-चुने अंक तक ~~व~~ सिमटकर रह जाता है । उत्साह की कमी नहीं है ।

आज भी ~~कन्हैयालाल प्रभाकर~~ ऐसे संपादक मौजूद है "जिसके भीतर बलिदान का लावा पिघलता था वह पत्र निकालना आरंभ करता. । इसका अर्थ था कि संपादक धीरे-धीरे आत्मदाह के लिए तैयार है " ‖1‖ पत्रिका निकालना आज भी 'आत्मदाह' से कम नहीं है -- लिखना, छापना और फिर डाकघर जाकर उन्हें भेजना, इस सबका भार संपादक उठाये इतना व्यस्त हो जाता है कि लेखन, जिसके लिए वह ये भार उठाता है, ~~कहीं~~ पीछे छूट जाता है । फिर, कभी अर्थ की कमी, कभी रचनाओं के चयन की समस्या और अच्छी रचना प्राप्त करने के संघर्ष । इतने संघर्षों से जूझते हुए भी पत्रिका अपने पाठक तो नहीं पहुंच पाती या पाठक होते भी है तो गिने-चुने जिनमें कुछ बुद्धिजीवी-विद्यार्थी (इधर ट्रेड यूनियन का सहयोग भी मिला है) तथा ऐसे व्यक्ति शामिल है जिन्हें पत्रिका के अंक उपहारस्वरूप मुफ्त प्राप्त हो जाते हैं । यह भी देखने में आया है कि लघु पत्रिका आंदोलन के कट्टर समर्थक बुद्धिजीवी भी इन पत्रिकाओं को खरीदकर पढ़ने में अधिक उत्साह नहीं दिखाते है, अधिक कीमत के कारण । यद्यपि वे स्वयं इस तथ्य से भलीभांति परिचित होते हैं कि अर्थाभाव के कारण इन पत्रिकाओं को लागत से कम कीमत पर निकालना संपादक के लिए आत्मघात सिद्ध हो सकता है ।

लघु पत्रिका के साथ ऐसी अनेक समस्याएं है जिनका कुछ समाधान, यदि एक संगठन या ~~मं~~ मंच बनाकर पत्रिका निकाली जाय तो हो सकता है । किंतु, यह समाधान व्यवहार में अधिक सफल नहीं हो सका है. परंतु बुद्धिजीवी-संपादक, लेखक व पाठक यदि अपने कुछ ~~वर व~~ उदारतापूर्ण नीति अपनाएं तो यह प्रयास संभव है कुछ ~~संभव~~ सफल हो सके । पत्रिकाओं में इस प्रकार की सहयोग भावना आज भी मौजूद है, प्रायः वे मित्र पत्रिकाओं की सूचियां इस अनुरोध के साथ प्रकाशित करती है कि 'इन्हें भी पढ़ें' । आवश्यकता है इस सहयोग भावना को और प्रोत्साहित करने की । जिससे ये पत्रिकाएं हिंदी साहित्य के विकास में श्रेष्ठ रचनाएं प्रदान कर, अपना योगदान दे सकें ।

लघु पत्रिका विभिन्न भाषाओं तथा राष्ट्रों में एक आंदोलन का रूप धारण कर चुकी है, परंतु संभवतः हिंदी लघु पत्रिका ही ऐसा आंदोलन है जिसने पूंजीवादी-सामंती मूल्यों का विरोध करके प्रगतिशील भूमिका का निर्वाह किया है । बंगाल, जो

---

‖1‖ रमेश उपाध्याय, जनवादी साहित्य के दस वर्ष पृ०

अनेक स्तरों पर हिन्दी साहित्य का अगुआ रहा इस दिशा में भी पीछे नहीं रहा । सन् 1920 में बालमुकुन्द गुप्त, पं॰माधव प्रसाद मिश्र, गोविंद नारायण मिश्र, राधामोहन गोकुल, पं॰माधव शुक्ल, अंबिका प्रसाद वाजपेयी, पं॰ईश्वरी प्रसाद शर्मा जैसे साहित्यकार-पत्रकार तथा मतवाला जैसी अनेक पत्रिकाएं पश्चिम बंगाल का योगदान थे । वह प्रदेश आज भी देश की साहित्यिक और राजनीतिक स्थितियों को नयी गति दे रहा है - सनीचर, युयुत्सा, विध्वंस, अन्यथा, कथन, बोध, दंश, सामयिक, लेखन, संकलन, समीक्षक, आदि अनेक लघु पत्रिकाओं ने वहीं जन्म लिया ।

लघु पत्रिका ने अपने सामर्थ्य के भीतर भी अनेक नई उपलब्धियां हिन्दी साहित्य को दी है । अनेक राजनीतिक वैचारिक परिचर्या आयोजित हुई, वैचारिक बहसों का प्रकाशन किया, गीतों को जन गीतों का रूप दिया, नौटंकी जैसे नाट्य रूपों को पुन: जीवित किया, साक्षात्कार, पत्र और संस्मरण साहित्य को विकास किया, विश्व व भारतीय साहित्य की रचनाओं का अनुवाद किया तथा इन सबसे बढ़कर भाषा का जनवादी रूप विकसित कर उसे अधिक प्रेषणीय व संवेदनशीलता का नया संस्कार प्रदान किया ।

इन सबके बावजूद यदि लघु पत्रिका अपने विशेष पाठक वर्ग के बाहर लोकप्रिय न हो सकी तो इसका कारण साधनकीनता व साक्षरता का अभाव है । लघु पत्रिका हर युग में अपने सामयिक संदर्भों को वाणी देती रही है, राजनीतिक आंदोलन से आलोड़ित हुई, साहित्यिक आंदोलनों को विकसित करती रही है । साहित्यिक आंदोलनों में-काव्यांदोलन ही अधिक प्रबल रहे अत: विभिन्न काव्य प्रवृत्तियों के अनुसार उनकी समर्थक पत्रिकाएं भी प्रकाशित हुई । इसी कारण इस शोध में काव्यांदोलनों की अधिक चर्चा हुई तथा कविताओं के उद्धरण अधिक है, इसका दूसरा कारण ये भी है कि कविता संप्रेषण का सक्षम माध्यम होती है ।

इस शोध में भी उतनी ही कठिनाईयां आई जितनी लघु पत्रिका के प्रका-

शन में होती है । जब पत्रिका निकालना संघर्ष पूर्ण प्रयास होता है तो उस पर शोध करना भी आसान नहीं रह जाता है । समस्याएं अनेक प्रकार की थी, जिनमें सबसे बड़ी थी - पत्रिकाओं को प्राप्त कर पाना । इन दो दशकों में हजारों पत्रिकाएं प्रकाशित हो चुकीं किन्तु अब तक ऐसे किसी पुस्तकालय की स्थापना नहीं हो सकी है जहां सभी लघु पत्रिकाएं मिल सकें । कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय में ऐसी पत्रिकाएं है जो पंजीकृत हुई, जबकि प्राय: लघु पत्रिकाएं बिना पंजीकरण के ही प्रकाशित होती रही । आगरा में "भैरव पुस्तकालय" एक वृद्ध साहित्यप्रेमी भैरव बाबा की निजी लाइब्रेरी है जहां सन् 40 से पहले की अधिकांश पत्रिकाएं उपलब्ध हैं । किन्तु भैरव बाबा सा साहित्य प्रेम सन् 40 के बाद के साहित्य प्रेमियों में देखने को नहीं मिला जहां अब तक की पत्रिकाओं का संग्रह मिल सकता । अपने शोध के लिए मुझे विभिन्न साहित्यकारों के पास एकत्र कुछेक पत्रिकाएं ही मिल सकीं, जिन्हें वे अमूल्य निधि सा संजोकर रखे हुए हैं । किन्तु उन सबको मिलाकर पूरे आंदोलन का तीन चौथाई अंश भी एकत्र न हो सका । पटना के बसंत कुमार, दिल्ली में सुधीश पचौरी, चंचल चौहान, रमेश बक्षी, रमेश उपाध्याय तथा मथुरा में सत्यसाची ने अनेक पत्रिकाओं का संग्रह किया है । यद्यपि इन सबसे मदद नहीं ले सकी किन्तु ये सूचना भविष्य में यदि कोई इस विषय पर शोध या अध्ययन करना चाहे तो उनके लिए है ।

पत्रिकाएं मिल जाने के बाद भी कुछ दिक्कतें पेश आईं जैसे प्रामाणिक तथ्यों का अभाव । अनेक पत्रिकाओं में किसी एक विषय पर अलग-अलग प्रकार की सूचनाएं प्रूफ की गलती मिली एक ही पत्रिका के प्रकाशन की तिथि भिन्न दी गई । इन शंकाओं के समाधान का कोई जरिया नहीं है क्योंकि या तो पत्रिका के अंश उपलब्ध नहीं हुए या हुए भी तो उनके संपादक "देश-काल" की परिधि से ऊपर और इस ओर से बेखबर मिले, पत्रिकाओं में उनका प्रकाशन समय, स्थान या संपादक का नाम तक लुप्त थे । इसी कारण पत्रिकाओं की नामावली में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध हो सकती है, नाम, स्थान या समय में गलती हो सकती है ।

इस शोध में लघु पत्रिका आंदोलन को समयानुसार दो दशक में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में लघु पत्रिका की परिभाषा तथा इसकी परंपरा के सूत्र हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में ढूंढने का प्रयास किया है।

दूसरा अध्याय, सन् 60 से 70 तक में विभिन्न काव्यांदोलनों व साहित्यिक प्रवृत्तियों के समानांतर चल रहे लघु पत्रिका आंदोलन के इस दशक के विकास का अध्ययन हुआ है।

तीसरा अध्याय सन् 70 से 80 तक में - इस दशक में आंदोलन के स्वरूप तथा बिखराव एवं इस आंदोलन के वर्तमान स्वरूप पर विचार किया है।

अंतिम अध्याय में लघु पत्रिकाओं के साहित्यिक योगदान व इसके वैचारिक मुद्दों के अध्ययन का प्रयास किया है। इसी में सन् 50 से प्रकाशित हुई लघु पत्रिकाओं की "अकारादि" क्रम में सूची दी गई है।

भूमिका के इस हिस्से में विधिवत् ढंग से मुझे सहयोगियों का धन्यवाद-ज्ञापन करना चाहिए किन्तु इस औपचारिकता को व्यक्तिगत रूप से निभाना ही उचित होगा क्योंकि सहयोगियों की सूची भी बहुत लंबी है। यहां केवल अपने शोध - निर्देशक केदार जी का उनके निर्देशन और आत्मीयता के लिए आभार प्रकट करना चाहूँगी।

यदि लघु शोध प्रबंधों में "समर्पण" करने की कोई परंपरा होती तो उसका निर्वाह करते हुए मैं अपना यह शोध-कार्य "लघु पत्रिका के साहसिक आंदोलन" को ही समर्पित करती।

**********

# "लघु पत्रिका" : आंदोलन रूप में आरंभ

## प्रथम अध्याय

पत्रकारिता में लघु, अव्यावसायिक अथवा स्थापित, व्यावसायिक पत्रिकाओं का विभाजन पिछले कुछ दशकों से अधिक प्रखर हुआ है। भारतीय अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी स्थान के विकास के साथ-साथ यह प्रवृत्ति भी पुष्ट होती गई। सन् 60 तक, जिस मात्रा में इसका विकास हो चुका था, स्वाभाविक ही था कि पत्रकारिता में समानांतर चल रही, एक-दूसरे की सर्वथा प्रतिकूल इन प्रवृत्तियों की अलग से पहचान हो जाती।

पत्रकारिता के क्षेत्र में यह विरोधी प्रवृत्ति के विकास के कारणों की यदि पड़ताल की जाए तो उसके सूत्र भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास तथा भारतीय राजनीति के परिवर्तनों में मिलेंगे।

यद्यपि उस जनवादी पत्रकारिता का आरंभ भारतेन्दु के समय से ही हो चुका था, जिससे आज की "लघुपत्रिकाएं" अपना संबंध जोड़ती है। किन्तु सन् 60 से ही इसका आरंभ इस कारण माना जा सकता है क्योंकि यही वह समय है जब पत्रकारिता का आश्रय लेकर जनवादी पत्रकारिता पर हमला हुआ। स्वाधीनता-पूर्व की देशभक्ति पूर्ण पत्रकारिता पर किए गए अत्याचार एवं दमन में विदेशी शासकों तथा विदेशी पंत्रकारों का योगदान होता था। किन्तु सन् 60 के दौरान जनवादी पत्रपत्रिकाओं का विरोध एवं दमन स्वदेशी सरकार एवं उनके द्वारा संरक्षण प्राप्त पत्रकारों द्वारा किया गया। इस दमन और विरोध से सीधा मोर्चा लेने के लिए सन् 60 के लगभग बहुत बड़ी संख्या में लघु पत्रिकाओं का प्रकाशन, देश के विभिन्न कोनों से आरंभ हुआ। लघु पत्रिकाओं के बढ़ते प्रभाव क्षेत्र को कम करने के लिए व्यावसायिक स्तर पर निकाली जाने वाली "बड़ी अथवा स्थापित पत्रिकाओं" तथा इन स्थापित पत्रिकाओं के विरोध में एक के बाद एक प्रकाशित होने वाली "लघु पत्रिकाओं का आपसी संघर्ष सन् 60 से 66 के मध्य इतना प्रत्यक्ष एवं प्रखर हो गया था कि इसे स्पष्ट रूप से इंगित किया जा सकता था।

शासक वर्ग द्वारा संरक्षण प्राप्त ये पत्र-पत्रिकाएं कौन सी थीं । इनकी प्रकृति एवं विरोध के कारण क्या थे ? ये पत्रिकाएं थी - पूंजीपति घरानों की पूंजी से निकलने वाली साहित्यिक या गैर साहित्यिक पत्रिकाएं । इनका विरोध मात्र साहित्य स्तर का ही नहीं था, ये राजनीतिक स्तर पर अपनाई गई नीतियों का एक हिस्सा भी थी । बल्कि इनका विरोध सर्वोन्मुखी भी कहा जा सकता है । आर्थिक-व्यवस्था, सामाजिक सांस्कृतिक सभी स्तरों पर देश में हो रहे परिवर्तनों को-नजर में रखते हुए तत्कालीन शासक वर्ग ने अपना प्रभुत्व कायम रखने के लिए नाना प्रकार के जो हथकंडे अपनाए - साम, दाम, दंड, भेद की नीति का अनुसरण किया, पत्रकारिता का यह व्यावसायिक रूप उन्हीं नीतियों का एक ही पक्ष उजागर करता है ।

पत्रकारिता : पूंजीवाद के प्रभाव में -

स्वाधीन - भारत के औद्योगिक विकास के लिए कांग्रेसी सरकार ने जिस पूंजी-वादी "मिश्रित अर्थव्यवस्था" का मार्ग चुना, उसके विकास के साथ-साथ मात्र उत्पादन के साधनों पर ही नहीं बल्कि समस्त सामाजिक सांस्कृतिक आर्थिक स्तरों पर पूंजीवादी प्रभाव व्याप्त होने लगा । पूंजीवादी अर्थव्यवस्था उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व तथा मुनाफे के सिद्धांत पर आधारित होती है । "समाज को, व्यक्तियों के बीच क्रूर और सार्वभौमिक प्रतिस्पर्धात्मक संघर्ष के विशाल क्षेत्र (बाजार) के रूप में रूपांतरित"[1] कर देती है । "व्यक्तियों के बीच सभी संबंधों में प्रतिद्वंदिता का तथा समुदाय के संपूर्ण आर्थिक जीवन का श्रेणीकरण, व्यवसायीकरण और मौद्रीकरण, जैसी प्रक्रियाओं के जरिए मुनाफे का समावेश करता है ।"[2] पूंजीवादी औद्योगिक नियोजन मुनाफाप्रद, उत्पादन को प्राथमिकता देता है और मानव का "उपभोग" वस्तु की तरह व्यवहार करता है । मनुष्य उसके लिए मात्र उत्पादन का एक साधन है । "श्रमिक" के रूप में जिसका श्रम उद्योगपति खरीदता है और उसका मूल्य "उत्पादन में उसके उपयोग" के अनुसार आंकता है । पूंजीवादी "उपयोगितावादी" दृष्टिकोण साहित्य पर भी लागू किया

---

1,2 - ए॰आर॰ देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की आधुनातन प्रवृत्तियां, पृ॰-124

गया तथा "क्रयशीलता" को देखते हुए उसी तरह के साहित्य को ही बढ़ावा दिया गया जो "मुनाफा" दे।

पूंजीवादी व्यवस्था के प्रभुत्वशाली वर्ग "बुर्जुआजी" को अपनी प्रभुता कायम रखने के लिए अर्थव्यवस्था तथा समाज के सभी सशक्त माध्यमों पर अपना नियंत्रण रखना आवश्यक प्रतीत हुआ। आर्थिक व्यवस्था इनके अधीन थी ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को अपने अनुकूल करने के लिए प्रयास जारी थे।

पूंजीवाद आर्थिक स्तर पर "सामंती" मूल्यों को तो अस्वीकार करता रहा किन्तु सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर वह सामंती मूल्यों को न केवल अपनाता है बल्कि बढ़ावा भी देता है। भारतीय पूंजीवाद में भी यह विचित्र अंतर्विरोध दिखाई दिया - जातिप्रथा, धर्म एवं सामाजिक संस्कारों को पूंजीपतियों ने ही नहीं उनके प्रतिनिधि शासक वर्ग ने भी प्रश्रय दिया।[1] पुरातनपंथी, पुनरुत्थानवादी एवं धार्मिक प्रवृत्ति के प्रचार-प्रसार के लिए कला एवं साहित्य में भी इसे बढ़ावा दिया गया।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के प्रचार प्रसार में पत्रकारिता तथा प्रेस की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए इससे इंकार नहीं किया जा सकता था कि प्रचार-प्रसार अथवा जनसंचार के लिए पत्रकारिता एक सशक्त माध्यम है। अतः इस पर नियंत्रण अथवा स्वामित्व हासिल करना भी लाभप्रद था।

---

1. "भारत की धर्मान्ध रूढ़िग्रस्त जनता के धार्मिक, सामाजिक संस्कारों का विरोध करके न शासक और न ही पूंजीपति, अपना नियंत्रण खोना चाहते थे। यही कारण है कि भारतीय बुर्जुआजी ने आधारभूत रूप से धर्मनिरपेक्ष बुर्जुआ जनतांत्रिक राज्य का निर्माण किया है जो आधुनिक वैज्ञानिक, तकनीकी तथा उदारवादी जनतांत्रिक शिक्षा देता रहा है, यद्यपि यह वर्ग तथा इसका बौद्धिक वर्ग सांस्कृतिक क्षेत्र में पुनरुत्थानवादी रहा है और जनता के बीच पुरानी धार्मिक और आदर्शवादी दार्शनिक अवधारणाओं को अधिकाधिक जनप्रिय बनाता रहा है, उन्हें समर्थन देता रहा है और उनका प्रचार करता रहा है।"

- ए.आर. देसाई भारतीय राष्ट्रवाद की अधुनातन प्रवृत्तियां, पृ. - 139

प्रेस पर अधिकार के पीछे एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि इस समय तक साहित्य एवं कला के क्षेत्र में "प्रगतिवादी" तत्व हावी थे, साथ ही पत्रकारिता का भी यथार्थोन्मुख स्वरूप प्रकट हो गया था। "साहित्य" एवं "पत्रकारिता" के माध्यम से प्रगतिवादी बुद्धिजीवी वर्ग जनसाधारण को "पूंजीवादी साम्राज्यवादी तथा सामंती" खतरों से निरंतर आगाह करता जा रहा था। बुर्जुआजी संस्कृति के विरोध में देश भौतिकवादी वैज्ञानिक समाजवादी विचारधारा का प्रभाव विस्तृत हो रहा था जिसके प्रमाण संसदीय चुनावों में "वामपंथी" शक्तियों की विजय से भी मिल रहे थे। ऐसे में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर रोक लगाने या फिर वैचारिक क्षमता को ही श्रमित करने के "नाना-प्रयास" किए गए। "जो कुछ भी हो पत्रों की शक्ति बढ़ती चली गई। नतीजा यह है कि पूंजीपतियों ने पत्र निकाल लिए और भाड़े पर लेखक और संपादक रख लिए, यानी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की जड़ में ही कुठाराघात हो गया। पूंजीपतियों के स्वार्थ की बातों पर जनहित का मुल्म्मा चढ़ाकर पेश किया जाने लगा। एक पूंजीपति के अधीन पत्रों की पूरी श्रृंखला आ गई।" [1]

विभिन्न प्रकाशन संस्थान स्थापित हुए, जिनमें ऐसे साहित्य एवं पत्र-पत्रिकाओं को प्रोत्साहन दिया जाता जो शासक एवं पूंजीपति वर्ग के हित में रचित साहित्य का प्रचार-प्रसार करती हो। बड़े औद्योगिक घरानों से अनेकों पत्र तथा धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका, कादंबिनी जैसी पत्रिकाएं निकली कुछ सरकारी अथवा सहकारी स्वर के साहित्य संस्थान या प्रकाशन संस्थाओं ने "ज्ञानोदय, आलोचना, कल्पना" जैसी पत्रिकाएं प्रकाशित की। इन पत्रिकाओं की प्रकाशन-नीति जो भी रही हो, परन्तु अपने असीमित साधनों के बल पर इन्होंने पत्रकारिता पर नियंत्रण पाने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की। इनके इस व्यापक प्रभाव के मध्य प्राणघाती संघर्ष करना पड़ा उन पत्रकारों एवं पत्र-पत्रिकाओं को जो स्वाधीनता पूर्व की जनवादी पत्रकारिता की परंपरा

---

1. मन्मथनाथ गुप्त, संचेतना 77 पृ. - 26
- "आर्थिक क्षेत्र में जो एकाधिकार की वृद्धि हो रही थी, प्रेस में एकाधिकार उसी का प्रतिफलन था।" ए.आर. देसाई : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ. - 189

को सीमित साधनों के साथ भी आगे बढ़ाना चाहते थे। जीवनपर्यन्त किसी प्रकार की सरकारी सहायता अथवा पूंजीपतियों के सहयोग लिए बिना पूंजीवादी प्रेस के बहिष्कार और विरोध की मुद्रा धारण किए रहे।

लघु पत्रिका का आर्विभाव -

पत्रकारिता का यही वह आयाम था जहां स्पष्ट रूप से "व्यवसायिक" और "लघु" पत्रिका का स्पष्ट विभाजन हुआ। सन् 60 से 66 के दौर में दोनों प्रकार की पत्रिकाओं के मध्य विरोध-प्रतिरोध के वैचारिक संघर्ष को तीव्रता से अनुभव किया गया। जिसके परिणाम स्वरूप सामने आया "लघु-पत्रिका" आंदोलन। लघु पत्रिका, जिसने पूंजी एवं उद्देश्य के अंतर के आधार पर स्वयं को "व्यावसायिक अथवा स्थापित" पूंजीपति घरानों की पत्रिकाओं से अलग किया [1] तथा अपनी पूर्ववर्ती, भारतेन्दु, प्रेमचंद की परंपरा से अपने संबंध का दावा किया। [2]

इस प्रकार 1966 से "लघु पत्रिका" आंदोलन का संगठित रूप से आरंभ हुआ देश के कोने-कोने से विभिन्न पत्रिकाएं इस आंदोलन में सक्रिय सहयोग करती हुई प्रकाशित हुई।

---

1. "सन् 67 को लोकप्रिय छोटी पत्रिका के प्रकाशन के इतिहास में एक प्रस्थान बिंदु मानने का मतलब यह नहीं है कि हम अपने इतिहास से फरार हो गए हैं xxx हां, आसन्नभूत की प्रभुत्वशील साहित्यिक पत्रकारिता अर्थात् 'प्रतीक, कल्पना, कृति और अणिमा' की परंपरा का मूलोच्छेद कर हम इजारेदार घरानों की सनसनीखेज पीली पत्रकारिता और जनविरोधी साहित्यिक अभिरुचि पर एकजुट होकर प्रहार करने के लिए अवश्य ही कृतसंकल्प हो गए हैं।" - "लघु पत्रिका आंदोलन का विकास, पृ॰ - 17

2. "अपने क्रांतिकारी पूर्वजों की विरासत को नए जनवादी उभार काल में सुरक्षित - संरक्षित कर उसे और भी जीवंत और शक्तिशाली रूप देने का काम भी शुरु कर रहे हैं। 'धर्मयुग, हिन्दुस्तान, कादंबिनी, सरिता, ज्ञानोदय' आदि सेठों के घरों से निकलने वाली पत्रिकाओं के संपादक अपने बाप-दादा का नाम गिनाते वक्त हमारे ही पूर्वजों की परंपरा से अपने को जोड़ते हैं, पर वास्तविकता यह है कि ये हमारे पूर्वजों की संतान नहीं, इनका अपना इतिहास भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की सांस्कृतिक नवजागृति के अंदर कहीं ढूंढने पर भी दिखायी नहीं देता।" "लघु पत्रिका आंदोलन का विकास" मुरलीमनोहर प्रसाद सिंह : "जनवादी साहित्य के दस वर्ष" पृ॰ - 97

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर -

"लघु-पत्रिका" का नामकरण, संभवत: पश्चिमी देशों में चले "लिटिल मेगजीन" आंदोलन की तर्ज पर किया गया होगा । क्योंकि भारतीय (हिन्दी) लघु पत्रिका आंदोलन तथा विदेशी "लिटिल मैगजीन मूवमेंट" की प्रकृतिगत विशिष्टता में बहुत समानता थी । 20वीं शताब्दी के आरंभिक दिनों में - इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली तथा रूस जैसे कई देशों में यह आंदोलन आरंभ हुआ । इनकी परिस्थिति भिन्न थी किन्तु उद्देश्य तथा विरोध के स्वरएएक समान थे । बड़ी पूंजी की व्यावसायिक पत्रिकाओं तथा (यूरोप में) "अकादमिक" पत्रिकाओं में स्थान न पाने वाले "नवलेखन" व नए रचनात्मक प्रयोगों को मंच देने के लिए "लघु पत्रिकाओं" की आवश्यकता पड़ी । इन पत्रिकाओं से जुड़े बुद्धिजीवी वर्ग में - साहित्यकर्मी, कला तथा थियेटर से जुड़े कलाकार शामिल थे । इस प्रकार ये पत्रिकाएँ एक "सामूहिक विरोध" के रूप में यह मात्र साहित्य तक ही सीमित नहीं रहा अपितु सभी सांस्कृतिक स्तरों तक व्याप्त रहा ।

अमरीका में "लिटिल मैगजीन" का आंदोलन क्रांतिकारी तथा गैर क्रांतिकारी शक्तियों के अंत: संघर्ष के परिणाम स्वरूप अस्तित्व में आया । शीतयुद्ध, कम्युनिस्टों की विश्व विजय की आशंका राजनीतिक आर्थिक - सामाजिक समानता की मांग करते हुए "नीग्रो आंदोलनों" की शुरुआत के कारण अमरीका में जो संशय, विषाद तथा शून्यता का वातावरण व्याप्त था, इसके मध्य "पुरातनपंथी प्रतिक्रियावादी तथा उदारवादी प्रति - गामी राजनीतिक दलों में वैचारिक भेद-मतभेद प्रकाशित एवं प्रचार करने हेतु इन पत्रिकाओं को प्रकाशित किया गया । वैचारिक रूप से ये पत्रिकाएँ प्रतिबद्ध भी हुआ करती थीं - राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन के लिए । इस परिवर्तन को लाने के तरीकों के संबंध में इनमें मतभेद थे किन्तु एक बात जो सभी पत्रिकाओं में समान थी वह यह कि ये सभी पत्रिकाएँ "अधिक मानवीय आग्रह" की मांग करती रही । इसी कारण इनका महत्व एक देश काल की सीमा से निकालकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फैल गया । (1)

---

1. जॉन एल. कॉपर - दि रोल ऑफ लिटिल मैगजीन, 1969 लघुपत्रिका प्रदर्शनी में प्रकाशित पुस्तिका में प्रकाशित लेख (देखें, परिशिष्ट)

"लघु पत्रिका" आंदोलन के अंतर्राष्ट्रीय चरित्र के विषय में कुछ समानताएं स्पष्ट है -

1. कि ये ~~व्यवस्थित~~ स्थापित पत्रिकाओं के विरोध में आरंभ हुआ ।
2. इसमें विभिन्न सांस्कृतिक वर्गों के बुद्धिजीवी शामिल हुए, जिसके कारण यह साहित्य-कला के व्यापक क्षेत्र में विस्तृत हुआ ।
3. नए रचनात्मक प्रयोगों तथा नवलेखन को मंच देने के लिए इसका प्रयोग हुआ । तथा
4. प्राय: लघु पत्रिकाएं किसी विचारधारा की संवाहक अर्थात् 'प्रतिबद्ध' रही । (इसी कारण "साहित्य में राजनीति का विरोध करने वाले इसे" प्रोपैगैंडा अर्थात प्रचार-आंदोलन घोषित करते हैं ।)

---

कुछ भारतीय तथा विदेशी भाषाओं की पत्रिकाएं -

1. अनिंदा - बंगला
2. कृतिवास - बंगला
3. शल्य कविता - बंगला
4. वाचा - मराठी
5. दिगंबर कवुलु - तेलगु

---

1. Overland - Australia
2. Pardes - Hanover
3. Quadrant - Sydney
4. Presence - Buffalo
5. Breakthru - England
6. 'Chicago - Review' - Chicago
7. Delta - Amsterdam
8. Evergreen - New York
9. Fragment - New York
10. Genre - California
11. Land Fall - New Zealand
12. Madstorm - New York
13. 'X' - London
14. Open Letter - Canada

भारतीय भाषा - बंगला, मराठी, गुजराती आदि में भी लघु-पत्रिका "संवाद की तीखा माध्यम" बनकर अस्तित्व में आई । विशेषकर "बंगला" भाषा में व्यावसायिक पत्रकारिता से ये निरंतर संघर्षरत रही । "मोनोपली (एकलस्वामित्व) प्रेस", "प्रतिक्रियावादी-पॉप" साहित्य से बंगला साहित्यकार तथा पत्रिकाओं को सामना करना पड़ता है । (1) यही स्थिति संभवत: सभी भाषाओं होगी । प्रमाणों के अभाव में इसे सिद्ध कर पाना मुश्किल परन्तु फिर भी यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि जहां भी "लघु-पत्रिकाएं" अस्तित्व में आई उन्हें इसी प्रकार की विकट परिस्थितियों ने जन्म दिया तथा जीवनपर्यन्त इन्हीं से जूझते हुए उनका प्राणांत हो गया ।

हिन्दी में लघु-पत्रिका" आंदोलन -

हिन्दी में इस आंदोलन की पृष्ठभूमि में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन रहे । जिनमें 1947 में ब्रिटिश शासन से मुक्ति एक निर्णायक कारणों में से एक है । बहुत उमंगों के साथ भारत ने आजादी पाई । भारतीय शासन की बागडोर "स्वदेशी" कांग्रेस सरकार को देने के साथ, जो सुनहरे स्वप्न प्रत्येक भारतीय ने संजोए वे शीघ्र ही धुंधलाने लगे । अपनी अमित, दोहरी नीतियों के फलस्वरूप कांग्रेस सरकार ने अपने शासन के आरंभिक पांच वर्षों में ही जनमत का विश्वास खो दिया । 1947 से'51 तक आंध्र के "तेलांगना" प्रदेश के हैदराबाद निजाम की ऐयाशियों और ज्यादतियों से क्षुब्ध किसान, कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में सशस्त्र विद्रोह का मार्ग अपनाया । लगभग पांच वर्ष तक चलते रहे इस क्रांतिकारी आंदोलन को दबाने के लिए भारतीय सेना को निजाम की मदद के लिए भेजा गया । इस समय तक यह आंदोलन आंध्र के निकटवर्ती क्षेत्रों में भी फैल चुका

---

(1) "बंगला साहित्य में संकट का प्रमुख कारण है - मोनोपली प्रेस, और वहाँ से प्रकाशित पत्रिका या किताब, जो मात्र आर्थिक लाभ को ध्यान में रखता है । बिक्री बढ़ाने वाली रचना ही उनका साहित्य है । इस तरह लेखन के क्षेत्र में "पॉप" मानसिकता प्रवेश कर गई है तथा "पॉप" लेखकों को लिखना पड़ता है । दीपेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय, समग्र 4, पृ॰ - 2

था । सेना द्वारा करवाए गए क्रूर दमन का मंजर सभी ने देखा । विद्रोह की यह अकेली मिसाल न थी 1946 के बाद से नाविक विद्रोह का भी क्रम शुरू हुआ जो बंबई, तायालर पुन्नप्रा तथा ट्रावनकोर के इलाकों में हुआ । जिसने मजदूर, किसान युवा सभी वर्गों के जुझारु चरित्र की पहचान दी । सर्वोन्मुखी विरोध का कारण, अपना सत्ता कायम रखने के लिए सरकार को विक्रमता का जामा उतार एक ओर तो सभी विरोधी स्वरों को दबाने का क्रम शुरु किया, दूसरी ओर छलावे की राजनीति अपनाकर "समाजवादी" होने का मुखौटा ओढ़ा । किन्तु इन सब का जनसाधारण पर क्या प्रभाव पड़ा यह प्रथम चुनाव परिणामों ने प्रमाणित किया जब आंध्र-केरल तथा पश्चिम बंगाल में "वामपंथी शक्तियों" को विजय मिली ।

सत्ताधारी कांग्रेस सरकार की नीतियों तथा विरोधी स्वरों को दबाने या क्षीण करने के विभिन्न प्रयासों का पर्दाफाश करने के लिए युवा वर्ग को मजदूर-किसानों की शक्ति का विश्वास दिलाने के लिए बुद्धिजीवी वर्ग के प्रयास से कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने व्यावसायिक वर्गों से मोर्चा लिया । एक बार फिर "भारतेन्दु" द्वारा शुरू की गई "प्रगतिशील" पत्रकारिता की सशक्त परंपरा को पुनर्जीवित किया गया । जिन राज्यों में "जनवादी आंदोलन" तेज थे उन्होंने इस आंदोलन को नेतृत्व किया परिणाम स्वरूप पश्चिम बंगाल इन पत्रिकाओं का प्रथम गढ़ बना ।

इस आंदोलन की एक चारित्रिक विशिष्टता ये भी है कि अपने वर्गीय स्वरूप में यह "मध्यवर्गीय आंदोलन था है। अर्थात् इसको निकालने वाले तथा इसे पढ़ने वाले दोनों ही उस मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी समुदाय" के प्रतिनिधि है, जिनका अविर्भाव ब्रिटिश शिक्षा-नीति के फलस्वरूप हुआ । इस युग में भी यह वर्ग अत्यंत विकट परिस्थिति में जी रहा था । सामंती मूल्यों, पूंजीवादी संस्कृति सभी की मार इसी वर्ग के लिए थी । भारतीय सरकार की "शिक्षा की विवेकपूर्ण योजना" के अभाव में बहुसंख्यक शिक्षितों के रोजगार का कोई उपाय न था । सरकारी आर्थिक नीति मुट्ठी भर धनिकों को ही सुरक्षा प्रदान कर रही थी । किन्तु अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर भी इन पूंजी-पतियों को घाटा ही हो रहा था कारण एक ओर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बढ़ती प्रति-द्वंदिता के कारण भारतीय माल की बिक्री कम हो रही थी, तो दूसरी ओर देशी उपभोक्ता की आर्थिक दुरावस्था के कारण "क्रय शक्ति" घट रही थी, फलतः घरेलू

व अंतर्राष्ट्रीय बाजार सिकुड़ता जा रहा था । शिक्षा और रोजगार के असंतुलित अनुपात, प्राकृतिक आपदाएं और व्यावसायिक मंदी, कुल मिलाकर "आर्थिक संकट" भारतीय अर्थव्यवस्था को घेरे हुए था । मध्यवर्ग की दशा निम्नवर्ग से बहुत बेहतर न थी किन्तु इससे भी बढ़कर जो उन्हें निरुत्साहित करता वह ये कि कर सकने की क्षमता तो उनके पास थी पर कुछ करने का न साधन था न ही अवसर ।

इस विषादमय स्थिति ने मध्यवर्गीय युवाओं को "भाग्यवादी" "अवसरवादी" बना दिया । साहित्य में भी इसी के कारण अनेक "व्यक्तिवादी" अथवा सार्वभौमिक बहिष्कारवादी प्रवृत्तियां उपजीं । इन प्रवृत्तियों को पूंजीपति तथा सरकार दोनों ने भुनाया । कहीं नौकरी तो कहीं पुरस्कार के लोभ में युवाओं का एक वर्ग इनके संरक्षण में चला गया । बदले में इनके साहित्य को व्यावसायिक पत्रों ने पोषित एवं पल्लवित किया । साहित्य तथा पत्रकारिता को "सही भूमिका से हटाने के लिए प्रचार तंत्रों आकाशवाणी, साहित्य अकादमी, प्रकाशन संस्थान आदि को नियंत्रित एवं निर्देशित किया गया । सामंती पूंजीवादी व्यवस्था ने आकाशवाणी की अफसरी, राज्यसभा की सदस्यता, शिष्टमंडलों की विदेश यात्रा, अकादमी पुरस्कार ऊँचे वेतनों पर (दिनमान - धर्मयुग में) नौकरी, ज्ञानपीठ पुरस्कार की विशाल धनराशि, सेठाश्रयी प्रकाशनों के ऊँचे पारिश्रमिक और रायल्टी, विश्वविद्यालयों की प्रतिष्ठित नौकरियां और पुस्तकों के पाठ्यक्रम में समावेश, अकादमी और मंत्रालयों के वेतनभोगी पदों तथा विदेशी दूतावास से मोटी आमदनी के प्रलोभन चक्र में अनेक साहित्यकारों को फंसा लिया । हम इसका कितना ही विरोध क्यों न करें लेकिन यह एक दुखद सत्य है कि हमारे अधिकांश मध्यवर्गीय सुविधा जीवी साहित्यकार जाने-अनजाने और प्रत्यक्ष रूप से दरबारी साहित्यकार की अप्रिय स्थिति में फंस गये है ।[1] पश्चिमी पतनशील अस्तित्ववादी तथा आध्यात्मवादी - धार्मिक रहस्यवादी साहित्य की रचनाकार इन्होंने सांस्कृतिक पतन को बढ़ावा दिया । सरकार द्वारा भी इस पतन को भरपूर सहयोग दिया गया । भारत ही नहीं सभी पूंजीवादी देशों में यह प्रवृत्ति बहुत सक्रिय रही

---

1. सत्यसाची साहित्यकार की सही भूमिका, उत्तरार्द्ध 4 पृ. 24

द्वारा
प्रभुत्व कायम रखने के लिए सरकार ने धर्म व रूढ़िग्रस्त अंधविश्वासों, रहस्यवाद को अस्त्र बनाकर प्रोत्साहित किया जाता रहा है। भारतीय शासक वर्ग में भी यह विचित्र विरोधाभास था कि उसने एक ओर सामंती मूल्यों को प्रश्रय दिया तो दूसरी ओर पूंजीवादी सभ्यता का भी समर्थन किया। जिसने जनसाधारण को एक भ्रमित "यथार्थ" और दृष्टि प्रदान की।[1]

इस भ्रम और फरेब के वातावरण में "युवाओं" का एक ऐसा गुट सक्रिय हुआ, जो वामपंथी विचारधारा से प्रभावित था तथा जिसके समक्ष विश्वस्तर पर अनेक "समाजवादी" देशों की "व्यवस्था" का आदर्श था। अपने देश में उस "आदर्श" को प्राप्त करने के लिए उसने अपनी रचनाओं एवं पत्रिकाओं द्वारा जनसाधारण के बीच व्यवस्था-विरोध और परिवर्तन की भावना का संचार किया। इसने साहित्यिक, सांस्कृतिक स्तर पर विश्व साम्राज्यवाद, सामंतवाद, पूंजीवाद अपसंस्कृति तथा व्यावसायिकता की प्रवृत्ति ही नहीं अपितु पतनशील साहित्यिक प्रवृत्ति से भी मोर्चा लिया। लघु-पत्रिकाओं में ये विरोध विभिन्न चरणों में प्रमुख मुद्दा बना रहा। [इस विषय में हुए "वाद-विवाद" का अध्ययन आगे के अध्यायों में किया जाएगा।] "गोरिल्ला युद्ध" रूप में हिन्दी में लघु-पत्रिका आंदोलन शुरू हुआ।

इसका आरंभ "समय" भी विवादास्पद रहा किन्तु मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि नयी कविता आंदोलन के समय से इसका आंदोलन रूप झलकने लगा था तथा 1960 में इसने "स्पष्ट" रूप से अपने आंदोलन रूप की घोषणा कर दी जब "अकविता" आंदोलन के समर्थन में बहुत अधिक संख्या में भारत भर में पत्रिकाएं प्रकाशित हुई।

---

1. "सत्तारूढ़ बुर्जुआ वर्ग के आदर्शवादी तथा धार्मिक रहस्यवादी दर्शन, जिन्हें आम जनता के बीच प्रचलित, अपरिष्कृत पौराणिक संस्कृति ने और मजबूत किया, भारतीय जनता की प्रमुख संस्कृति की संरचना करते हैं। इस संस्कृति ने जो सामाजिक भूमिका निभाई है वह प्रतिक्रियावादी है क्योंकि यह भौतिक जगत और सामाजिक जगत की एक निकट दृष्टिक तस्वीर प्रदान करती है, जो कि आर्थिक और सामाजिक संकट की गलत व्याख्या है, आम जनता की चेतना को सुस्त कर देती है और उसको अपनी समस्याओं के वैज्ञानिक हल के मार्ग पर आगे बढ़ने से विचलित करती है।"

ए॰आर॰ देसाई : भारतीय राष्ट्रवाद की अधुनातन प्रवृत्तियां, पृ॰-14।

1966 से पत्रकारिता की जनवादी-प्रगतिशील परंपरा अनेकों वामपंथी विचारधारा की समर्थक पत्रिकाओं के प्रकाशन से पुनः अस्तित्व में आई । इसकी प्रगतिशील परंपरा जुड़ती हुई लगभग एक शताब्दी पूर्व की "कविवचन सुधा" (1867) तथा उसका अनुकरण व अनुमोदन करती हुई अनेकों अन्य पत्र-पत्रिकाओं से जिन्हें - भारतेन्दु के बाद, राधा - चरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, गणेश शंकर विद्यार्थी, प्रेमचंद, यशपाल आदि प्रगतिशील पत्र साहित्यकारों-पत्रकारों ने प्रकाशित किया ।

लघु-पत्रिका की परिभाषा भी बहुत व्यापक है । मोटे तौर पर जो इस प्रकार दी जा सकती है कि यह पत्रकारिता का ऐसा "असंगठित" क्षेत्र है जिसमें सीमित पूंजी तथा सामूहिक प्रयास द्वारा, निज स्वार्थ, अर्थलाभ जैसे तुच्छ हितों से परे, साहित्यिक विकास एवं पाठक की सुरुचि का परिष्कार करने के उद्देश्य से पत्रिका प्रकाशित की जाए । अपने इन आदर्शों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, सीमित साधनों के कारण प्राणघातक संघर्ष इन लघु-पत्रिकाओं को करना पड़ता है उसकी बलिवेदी पर प्रायः अल्प-काल में ही ये पत्रिकाएं शहीद हो जाती है । "अनियतकालीन" "अल्पजीवी" विशेषणा जो इन पत्रिकाओं को मिलते हैं वह इसी संघर्ष का प्रमाण है । परन्तु फिर भी एक मशाल को थामने के लिए दूसरी पत्रिका अस्तित्व में आ जाती है इस प्रकार "युद्धभाव" से यह आंदोलन निरंतर विकासमान है ।

## साहित्यिक पत्रकारिता की परंपरा

यथार्थोन्मुख पत्रकारिता की परंपरा भारतेन्दु द्वारा आरंभ हुई । 1857 का गदर इस संदर्भ में एक निर्णायक बिन्दु माना जा सकता है । इस गदर की उग्रता तथा इसका दमन दोनों ही भारतीय जनमानस की चिंतन धारा बदलने में सहायक हुए । दमन का चक्र जितना क्रूर हुआ था उतने ही मुखर विरोध का स्वर लेकर नव बौद्धिक वर्ग सक्रिय हुआ । फलस्वरूप पत्रकारिता का एक नया रूप, नए कर्तव्य बोध के साथ सामने आया । बुद्धिजीवियों के लिए एक ओर विदेशी शासन के अत्याचार थे तो दूसरी ओर विदेशी भाषा का बलपूर्वक प्रयोग करने का दबाव । दोनों ही स्तरों की लड़ाई महत्व-पूर्ण थी ।

भारतेन्दु युग -

"निज भाषा-विकास" तथा "देश भक्ति" के उद्देश्य से भारतेन्दु ने जिस पत्र-कारिता की नींव डाली वह विकसित होकर अपने युग में क्रांतिकारी विचारों के प्रचार एवं प्रसार का सशक्त माध्यम बन गई । भारतेन्दु तथा उनके समकालीनों के समक्ष इतिहास रूप में 1857 का गदर था तथा वर्तमान में अंग्रेजी हुकूमत के अंतर्गत गुलामी का जीवन, जिनसे सबक लेकर उन्होंने बेहतर भविष्य - निर्माण के लिए जन - साधारण को जागृत करने का बीड़ा उठाया । "गदर" से प्रेरित साहित्य तथा अपने युग के देशी-विदेशी समस्याओं पर टिप्पणी, लेख आदि इस युग की पत्र-पत्रिकाओं में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है ।[1] विभिन्न विषयों पर चटपटे शीर्षक देकर अथवा मनो-रंजक शैली में लेख लिखकर ये लेखक अपना विरोध व्यक्त करते थे, जनता के बीच ये रोचक पत्र-वाव से पढ़े जाते थे । भारतीय उद्योग-धंधों का अंग्रेजी नीति के कारण विनाश[2] किसानों व कारीगरों की दयनीय दशा[3] स्वदेशी वस्तुओं का व्यव - हार[4] टैक्स, मंहगाई, दुर्भिक्ष[5] आदि विषयों पर संपादकीय टिप्पणी, लेख

---

1. "भारतेन्दु युग का साहित्य व्यापक स्तर पर गदर से प्रभावित है । इसका पहला प्रमाण यह है कि साहित्य में किसानों को लक्ष्य करके उन्हें संगठित और आंदोलित करने की दृष्टि से जितना गद्य-पद्य लिखा गया उतना दूसरी भारतीय भाषाओं में नहीं लिखा गया ।" - राम विलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण ; पृ • 12

2. कविवचन सुधा, 26 जनवरी सन् 1874 संपादकीय

3. कविवचन सुधा, 9 मार्च 1874 संपादकीय

4. हिन्दी प्रदीप, बालकृष्ण भट्ट, जिल्द 31, संख्या 4 -"वहीं सुशिक्षा और सभ्यता का दम भरने वाले हम हैं कि देशी चीजों के बर्ताव के लिए हजार बार सिर धुनते हैं । प्रत्यक्ष देख भी रहे हैं कि देश की बनी वस्तुओं को काम में न लाने से दरिद्रता देश में डेरा किए है पर विलायती चीजों के चटकीलेपन और नफासत में ऐसे फंसे हैं कि हमारे हजार बार लेक्चर का एक भी फल न हुआ ।"

5. "इत अकाल उत टिक्स लगायो कर सब पै बरजोरी ।
तेज अनाज ठीक कहुँ नहीं मर प्रजा सब ठौरी । भीख मांगत ले झोरी ॥
होली-गीत, सरसुधा निधि 1/16

अथवा कवित्त द्वारा अपने विचार व्यक्त किए । "काबुल की लड़ाई" पर "भारत - मित्र [1] के अंक में धारावाहिक रूप से टीका हुई, जिससे इस युग के पत्रकारों का विदेश-संबंधी व्यापक ज्ञान भी प्रामाणित होता है । भाषा एवं शैली के संबंध में इन पत्र-पत्रिकाओं में उदार दृष्टिकोण अपनाया [2] वस्तुत: इनकी भाषा और शैली की सरलता एवं मनोरंजकता की प्रधानता ही मुख्य कारण है जिससे इस युग के राजनीतिक सामाजिक, साहित्यिक समस्याओं पर चिंतन से परिपूर्ण इनके पत्र एवं साहित्य साधारण जनता के मध्य प्रसिद्धि प्राप्त कर सके । 1870 में लार्ड मेयो को लक्ष्य करके लिखा गया भारतेन्दु का लेख "लेवी प्राण लेवा" "कविवचन सुधा" में प्रकाशित हुआ, जिससे नई साम्राज्यवाद विरोधी चेतना का लेखकों में प्रसार हुआ । इन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से बढ़ते विरोध के स्तरों को दबाने के भी हर संभव प्रयास शासक वर्ग ने आरंभ किए । जनता को देश-दशा से परिचित कराना या सरकार की आलोचना करना भी राजद्रोह में शामिल माना जाता था [3] अत: विभिन्न एक्ट एवं संशोधनों के माध्यम से ऐसे लेखों एवं लेखकों को कानूनन अपराधी घोषित किया गया । यह क्रम सन् 1857 के गदर के उपरांत ही आरंभ हो गया था जब प्रेस का दमन शुरु हुआ । यह कानून-बिना लाइसेंस की प्रींटिंग प्रेस को बंद करने के इरादे से आरंभ

---

1. "औजों ने काबुल के ऊँट को बलवान करने के लिए कई बरस से चारा दिया पर जब उस पर बोझ लादने का विचार किया तब वह दुलत्ती झाँटने लगा । उस पर औजों ने उसकी नकेल पकड़ के अपनी ओर जोर से खींचा, तब तो काटने दौड़ा । तिस पर औजों ने लाचार होके चाबुक मारने का बंदोबस्त किया, किसलिए कि "ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी सकल ताड़ना के अधिकारी - काबुल की लड़ाई ; संपादकीय "भारत-मित्र"

2. "हम लोगों की हिन्दी भाषा है । यद्यपि ये प्राकृत से उत्पन्न हुई है तथापि संस्कृत का अखंड भंडार इसकी वृद्धि करे और जो इसमें कहीं कहीं सूरसेनी, मागधी, माथुरी, अरबी-पारसी और औजी भी सरल भाव से मिल गई है तो क्यों इसको बिगाड़ती है ? हमारी समझ में तो स्वभाव सुंदरी हिन्दी को वरन् अलंकृत करती है ।" - केशव राम भट्ट ; "बिहार-बंधु" ।

3. राम विलास शर्मा "भारतेन्दु और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा ; पृ. 32

हुआ परन्तु धीरे-धीरे इनमें इतने संशोधन हुए कि फिर प्रेस बंद करने के लिए किसी कारण की आवश्यकता भी नहीं रह गई 1867 में जॉन लॉरेंस ने "रेगुलेशन ऑफ प्रिंटिंग प्रेस एंड न्यूजपेपर्स एक्ट, 25, 1867, पास कर- पुस्तकों, समाचारपत्रों के प्रकाशन की स्वतंत्रता छीन ली । 1870 में इंडियन पेनल कोड में 124 अ, नई धारा जोड कर, आपत्ति जनक लेखकों को दंडित करने का प्रावधान शामिल कर लिया । इस समय का सर्वाधिक विवादास्पद एक्ट था, 14 मार्च 1878 को पास किया गया "वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट" जिसके अंतर्गतसरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह भारतीय भाषा के किसी पत्र-संपादक,प्रकाशक या मुद्रक को यह आदेश दे कि वे सरकार से इकरारनामा कर लें कि अपने पत्र में कभी कोई ऐसी बात प्रकाशित न करेंगे जो जनहृदय में सरकार के प्रति घृणा या द्रोह के भाव उत्पन्न करे । जिला मजिस्ट्रेटों या पुलिस कमिश्नरों को अधिकार था कि वे किसी समाचार-पत्र से जमानत ले सकते थे या किसी प्रकाशित सामग्री को जब्त कर सकते थे । इन प्रेस एक्ट एवं प्रेस की सरकारी दमन-नीतियों का पत्र-पत्रिकाओं में विरोध किया गया [1] भारत तथा इंगलैंड में भी"वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट" का विरोध देखते हुए सरकार को 7,दिसम्बर 1881 को यह एक्ट वापस लेना पडा । किन्तु 1898 में "राजद्रोह कानून" पास करके,इसके अन्तर्गत वर्नाक्युलर पेस को नियंत्रित किया गया । प्रेस-दमन की नीति लंबे समय तक जारी रही किन्तु इससे पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में कोई कमी न आई । डा० राम विलास शर्मा ने इस युग की पत्र-पत्रिकाओं की भौगोलिक सीमा का निर्धारण किया जिसके अनुसार कलकत्ता से बम्बई व लाहौर तक के क्षेत्र से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ [2]

मुख्य पत्र-पत्रिकाएं

कवि वचन सुधा- अगस्त 1867, हरिश्चंद्र मैगजीन,अक्तूबर 1873,भारतेन्दु कार्श
हिन्दी प्रदीप- सितंम्बर,1877,बालकृष्ण भट्ट प्रयाग
ब्राहमण - मार्च 1873, प्रताप नरायण मिश्र, कानपुर
भारतेन्दु- 1879 राधाचरण गोस्वामी
हिन्दुस्तान - 1885,राजा राजपाल सिंह,
भारत मित्र - 1899; बालमुकुन्द गुप्त
सार सुधा निधि- 1899 दुर्गाप्रसाद मिश्र

---

1. "हम देशीय पत्र संपादक है, हमारा सत्य कहना बुरा लगा, हमसे खुशामद कराने के लिए प्रेस एक्ट की घुडकी दिखलाई ,पर तुम्हे क्या? हम झूठ तो नहीं बोलते, तुम्हारी वृथा खुशामद तो नहीं करते ।"
-"सार सुधा निधि,"राधाचरण गोस्वामी, लेख-तुम्हे क्या ?"

2. "लाहौर,बंबई,कलकत्ता को यदि सीधी रेखाओं से मिला दिया जाए तो जो त्रिकोण बनेगा, उसके भीतर देश का वह भाग आ जायेगा, जहां से इस प्रकार के पत्र निकले थे"।
-राम विलास शर्मा, भारतेन्दु और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा ,पृ-23

## द्विवेदी युग से छायावाद तक

हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता एवं हिन्दी भाषा का व्यवस्थित विकास महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनके समकालीनों द्वारा किया गया । बीसवीं सदी के इस चरण से ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध जनांदोलन तेज हो रहे थे । देशी घटनाओं में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की उन्नायक संस्था-अखिल भारतीय कांग्रेस में अग्रवाद का जन्म लार्ड कर्जन की त्रुटिपूर्ण नीतियां, स्वदेशी आंदोलन आरंभ, मुस्लिम लीग की स्थापना तथा विदेशी घटनाओं में सबसे प्रभावशाली 1905 में जापान से रूसियों की पराजय आदि घटनाओं ने भारतीय बुद्धिजीवी को बहुत प्रभावित किया । इस युग में राजनीति, अर्थशास्त्र, आधुनिक विज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र तथा भारतीय दर्शन आदि विभिन्न विषयों पर निबंधी लिखे तथा वैज्ञानिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयास किए । देश में जब सांमती प्रवृत्तियां दृढ हो और वर्ण-व्यवस्था प्रबल हो, ऐसे में वैज्ञानिक चिंतन का प्रचार-प्रसार दुष्कर होता है । द्विवेदी युगीन साहित्यकारों को अपने इस चिंतन के लिए अपने देशवासियों का विरोध भी सहना पडता था [1]

द्विवेदी युगीन पत्रकारों को कई स्तरों पर मोर्चा लेना पडा- एक ओर अंग्रेजी शासन व उसकी नीतियां, परतंत्रता, गरीबी तो दूसरी ओर रीतिकालीन प्रवृत्तियों, रूढिग्रस्तता, धार्मिक अंधता का विरोध, तीसरी ओर हिन्दी भाषा का परिमार्जन, हिन्दी गद्य का विकास, खडी बोली की कविता में प्रतिष्ठा ।

1917 की रूसी-क्रांति की सफलता ने तत्कालीन बुद्धिजीवी को बहुत प्रभावित किया । अंतर्राष्ट्रीय राजनीति संबंधी कुछ लेख एवं संपादकीय टिप्पणी" जापान की जीत[2] चीन में सामाजिक परिवर्तन[3] शांति का सार्वभौमिक राज्य[4] रूस का राष्ट्रीय विप्लव [5] रूसी किसानों पर[6] रूसी मजदूरों पर [7] सरस्वती, मर्यादा आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। विदेशी साहित्यिक गतिविधियों की सूचनाएं[8]

---

1. यदि कोई लेखक निर्भय होकर कभी-कभी किसी वैज्ञानिक विषय पर लिखने का साहस कर बैठता है तो हिन्दी सामाचर-पत्रों के धार्मिक संपादक, बिना समझे बूझे उसको आडे हाथों ले डालते हैं । इसका फल यह होता है कि अन्य लेखक इन महन्तों की घुडकियों से डरकर, वैसे लेख लिखने की हिम्मत ही नहीं करते । हम नहीं जानते हमारे इस लेख पर क्या-क्या अत्याचार किए जाएंगे खैर, कुछ भी हो, आज हम सरस्वती के के पाठकों को संक्षेप में डार्विन के विकास सिद्धात का तात्पर्य समझाने का प्रयत्न करते
-मनुष्य क्या बीज है?"राम नारायण शर्मा का लेख, सरस्वती, जून 1912
2. अगस्त 1905, सरस्वती
3. सत्यशोधक, सितंबर 1915 सरस्वती
4. गणेश शंकर विद्यार्थी, अगस्त 1912
5. श्यामचरण राय, अप्रैल 1919,
6. अगस्त 1919, मर्यादा
7. रमांशकर अवस्थी, अगस्त 1919 मर्यादा
8. "इगरी के क्रांतिकारी बेलाकुम[लेख]नवंबर 1919/अफ्रीका में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, जनवरी 1917, सरस्वती/जपानी साहित्य, नवंबर 1913, सरस्वती/

भी इन पत्रों में पर्याप्त मात्रा में दी जाती थी । राष्ट्रीय समस्याओं पर-देश की गरीबी,(1) आर्थिक सुधार (2)स्वदेशी व्यवहार (3) आदि पर लेखों की बहुतायत है ।

1920 के लगभग भारतीय राजनीतिक पर अंग्रेजी शासन विरोधी आंदोलन और तेज हुए । महात्मा गांधी के राजनीति में प्रवेश के बाद स्वदेशी व असहयोग जैसे आंदोलनों के माध्यम से राष्ट्रीय मुक्ति की चेतना का भारतीय ग्रामीण जनों के बीच भी प्रचार-प्रसार हुआ । इस दौर में साम्राज्यवाद विरोधी स्वर साहित्य एवं पत्रिका दोनों में ही स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । विभिन्न क्रांतिकारी प्रकृति की पत्रिकाएं इस दौर में प्रकाशित हुई जिनमें साम्राज्यविरोध का स्वर सबसे बुलंद होता था । 1900 से 1936 तक के इस काल खंड में प्रकाशित हुई प्रमुख पत्रिकाएं हैं-

सरस्वती-1900,प्रयाग (नागरी प्रचारिणी सभी द्वारा संचालित)
(1903 से सं0) म0प्र0 द्विवेदी
समालोचक-1901,पं0 चंद्रधर शर्मा गुलेरी,जयपुर
समालोचक- अगस्त 1902,बाबू गोपाल राम,जयपुर
इंदु- 1909,अंबिका प्रसाद गुप्त,काशी (प्रकाशक,जयशंकर प्रसाद)
मर्यादा-1909,पं0 कृष्णकांत मालवीय,प्रयाग
अभ्युदय- 1910,पं0 बदरीप्रसाद पांडेय,प्रयाग
प्रताप -1913, गणेश शंकर विद्यार्थी
प्रभा - 1913,कालू राम गंगराडे, म0प्र0
माधुरी- जुलाई 1922,दुलारेलाल भार्गव,रूपनारायण पांडेय

---

1. "भारतवर्ष का कर्ज" सितंबर 1917,सरस्वती
2. भारतीय किसानों का उद्धार अगस्त 1915/भारत के लिए भारत के धन का उपयोग, सितंबर 1913- सरस्वती
3. विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं?
वृथा धन देश का क्यों दे रहे हैं ।
न सूझे है अरे भारत भिखारी
गई है हाय तेरी बुद्धि मारी ।
हजारों लोग भूखों मर रहे हैं ।
पड़े वे आज या कल कर रहे हैं ।
इधर तू मंजु मलमल ढूंढता है ।
न इससे और बढ़कर मूढ़ता है ।"

- महावीर प्रसाद द्विवेदी
जुलाई 1903,सरस्वती

मतवाला- 1923, निराला, कलकत्ता
सुधा- 1927, दुलारेलाल भार्गव
चांद - 1920, ज्ञाननदं
सैनिक - 1924, गणेश शंकर विद्यार्थी
विशालभारत -रामानंद चट्टोपाध्याय, 1928
वीणा - 1928, कालका प्रसाद दीक्षित
शक्ति - जनवरी 1929, रामवृक्ष बेनीपुरी
युवक- 1929, रामवृक्ष बेनीपुरी

साहित्यिक पत्रकारिता अपने जन्म से ही एक "मिशन के रूप में रही। अपने समय में विभिन्न प्रकार के विरोधों, दमन का सामना करते हुए व आर्थिक संकट झेलते हुए भी पत्रकार बड़ी लगन एवं तपस्या से पत्र प्रकाशित किया करते थे । यद्यपि बाद के नागरी प्रचारिणी सभी, जैसी साहित्यिक संस्थाओं की स्थापना से कुछ पत्रिकाओं को संबल मिला किन्तु फिर भी अधिकांश पत्रकारों की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी । खुद लिखना, छापना और बेचना, कभी-कभी पढकर भी सुनाना ऐसी बाते कथा-महानियों में भले मिल जाय, इतिहास में काम ही मिलती है । कार्तिक प्रसाद खत्री सरीखे धनी व्यक्ति ने जंगलों की खाक छानी और दूसरों के पत्र में नौकरी करके अपने जीवन का अंत कर दिया । "हिन्दी प्रदीप का दीर्घ जीवन उसके संचालक व संपादक की दीर्घ तपस्या का जीवन था । [1] गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे आदर्शवादी अपने प्रेस में हाथ या पैर से चलने वाली टैडल मशीन तथा हाथों से कम्पोजिंग का काम लेते थे । यदि किसी लेख के कारण उनको जेल जाना पड़ता जैसा की कई बार हुआ तो या उनके प्रेस पर ताला पड़ा या वह जब्त हो जाता था । " स्वराज्य " के आठ संपादक जेल गए यहां तक की काला पानीभीगए, हर बार प्रेस भी बंद हुआ और जमानत भी जब्त हुई। [2] ये किसी एक पत्र या पत्रकार की स्थिति नहीं सभी की यही कहानी थी ।

पत्रिकाओं के पाठक संख्या सीमित होती थी, विज्ञापन से प्राप्त आय के साधन तो और भी सीमित थे । सरकार कभी पत्रिकाओं की कुछ प्रतियां खरीदती थी किन्तु वह सहायता अस्थायी होती, किसी लेख या टिप्पणी को सरकार विरोधी करार कर दिया जाता और सहायता [खरीद] बंद हो जाती जैसा- कविवचन सुधा तथा हरीश्चंद्र मैगजीन के साथ हुआ । व्यावसायिक होकर भी पत्रिका से आय या लाभ नहीं था । वह जिस उद्देश्य से निकाली जाती थी वह आज की छोटी पत्रिकाओं के उद्देश्य के समानांतर था । अत: पत्रिकाओं में "छोटी-बड़ी"की सीमा रेखा स्पष्ट नहीं थी ।

---

1. रामविलास शर्मा- भारतेन्दु और हिन्दी भाषा का विकास, पृष्ट- 27,29
2. मन्मथनाथ गुप्त संचेतना" 77, पृ0-27

<u>प्रगतिवाद</u>

1936 में "प्रगतिशील लेखक संघ"की स्थापना, कई मायनों में एक महत्वपूर्ण घटना थी । पहली बार विभिन्न वर्गों व भिन्न विचारधारा के लोग एक जुट हुए तथा अपने वैचारिक मदभेद त्यागकर सबने"साम्राज्यवाद विरोध " का एक लक्ष्य बनाया । विश्व में समाजवाद के बढते प्रभाव तथा रूस में कम्युनिस्टों के सफल नेतृत्व से भारतीय बुद्धिजीवी तथा युवा वर्ग भी अछूता नहीं था ।

भारतीय राजनीति में भी युवा वर्ग को नेतृत्व की जिम्मेदारी सौंपी गई । कांग्रेसी मत, समाजवादी सिद्धांतों से प्रभावित, नेहरू अध्यक्ष बन चुके थे इसी समय विभिन्न ट्रेड यूनियन, छात्र संघ तथा किसान सभा की स्थापना से स्पष्ट हो गया कि समाजवाद का व्यापक प्रभाव भारतीय जन मानस पर पड रहा है । इसी समय"प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना के बाद प्रेमचंद को अध्यक्ष बनाया गया, जिनका साहित्य भी छायावाद का अंत तथा नए प्रगतिशील मुल्यों का घोतक था ।

साहित्य और राजनीति दोनों पर भी पुरातनपंथी हटाए गए थे । प्रकाशन मंचों और साहित्यिक संगठनों पर छाए"प्राचीनता भक्त, तथा पुरातनपंथी तत्वों की वजह से, नए साहित्यिक संगठन तथा अपनी विचारधारा व साहित्यिक मूल्यों के प्रकाशन के लिए नई पत्रिकाओं तथा नए साहित्य की आवश्यकता महसूस किया जाना, स्वाभाविक ही था ।"हंस" लेखक संघ का मुखपत्र बना । इस संघ से जुडे अन्य साहित्य कारों ने भी कई पत्र व पत्रिकाएं प्रकाशित की ।

'पुराने और नए स्कूल के प्रतिनिधियों के बीच का संघर्ष 1928 से मुखर रूप ले चुका था'[2] 1929 के बाद हिन्दुस्तान की परिस्थितियों में और जनता की आत्मगत चेतना में क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगे थे । जन-आंदोलनों का दमन, नमक आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन की असफलताओं के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद का क्रूर दमनकारी हिंसक चरित्र सामने आ गया था और सत्य-अहिंसा पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा था । समाजवादी विचारधारा का तेजी से प्रसार हो रहा था "भारतेन्दुयुगीन यथार्थवादी रूझान के विकास तथा देश की परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील रचनाकारों की ईमानदार प्रतिक्रियाओं से जो यथार्थवादी साहित्य जन्म ले रहा था, प्रगतिवाद उसी का सुसंगत ऐतिहासिक विकास था" (1)

मोटे तौर पर सन् 1930 से 1947 तक का समय भारतीय इतिहास का सबसे क्रांतिकारी समय था, ब्रिटिश साम्राज्य से भारतीय जनता के संघर्ष का चरम-बिन्दु । यही वह समय था जब द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका ने मानव जाति के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा दिए, बंगाल में भयंकर अकाल ने प्राकृतिक आपदा का क्रूर रूप दिखाया । महात्मा गांधी का असहयोग आंदोलन अपनी तार्किक परिणतियों तक पहुंचा

---

1. रेखा अवस्थी"प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य, पृ. 19

– "1934 से किसानों और मजदूरों का जो व्यापक आंदोलन हुआ, उसके कोलाहल में प्रगतिवाद का जन्म हुआ। हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का यह सर्वथा स्वाभाविक विकास था । राष्ट्रीय जागरण का स्वर, रूप और वीणा देने वाले कलाकार और साहित्यिक उससे अछूते नहीं बच सकते थे" "प्रगतिवाद और बेनीपुरी जी"नेमिचंद्र जैन

2. रामधारी सिंह दिनकर

और 1942 में विराट जन-आंदोलन शुरू हुआ, अंग्रेजों की सफल कूटनीति तथा कांग्रेसी नेतृत्व की अदूरदर्शिता से देश का विभाजन, सांप्रदायिक दंगों में भयंकर नरसंहार हुआ अहिंसा से हिंसा की यात्रा कर भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता मिली ।

इस राजनीतिक उथल-पुथल तथा परिवर्तन के प्रतिच्छाया प्रगतिशील रचनाओं तथा पत्रिकाओं में मिलती थी । प्रगतिशील साहित्यक आंदोलन को विकसित करने तथा प्रसारित करने में इन पत्रिकाओं की अग्रणी भूमिका रही । इस आंदोलन की प्रमुख पत्र-पत्रिकाएं थीं ।

जागरण- प्रेमचंद
हंस - 1929, प्रेमचंद, बनारस
स्वाभ-1938, नरेन्द्र शर्मा, पंत
चकल्लस - अमृतलाल नागर (हास-व्यंग्य का साप्ताहिक)
उच्छृंखल - 1940, नरोत्तम नागर, इलाहाबाद
संघर्ष - नरोत्तम नागर, लखनऊ
प्रभा - 1940, शिवदान सिंह चौहान, इलाहाबाद
जनता - रामवृक्ष बेनीपुरी, पटना, 1937
कर्मवीर - बेनीपुरी, खंडवा
योगी - बेनीपुरी पटना
संघर्ष - 1938, नरेन्द्र देव
विप्लव-1938, यशपाल

आज/ नया पथ/नया साहित्य/नयी चेतना/हिमालय /अवंतिका/

सरकारी दमनचक्र इस समय भी जारी थी । राजनीतिक स्तर पर इसका निशाना बनी-कम्युनिस्ट पार्टी, जिसे 1934 में गैरकानूनी घोषित किया गया । पत्र-पत्रिकाओं में चुन-चुनकर उन्हें ही लक्ष्य बनाया गया जो समाजवाद, साम्यवाद, जन-जागरण, किसान-मुक्ति, जन संघर्ष का प्रचार करती थी "जागरण" हंस" से 1932 में जमानत मांगी गई ।"आज"को बंद कर दिया गया ।"राजद्रोह कानून" के अंतर्गत (1930-34) तक 4 वर्षों में 348 समाचारपत्रों के प्रकाशन बंद कर दिए गए । मार्क्सएंगेल्स लेनिन, गोर्की मौरिस थोरो की पुस्तकों का वितरण गैर कानूनी कर दिया और बाजार में उपलब्ध पुस्तकें जब्त की गई । रवीन्द्रनाथ टैगोर लिखित"रूस की चिटठी" पर पाबंदी लगा दी गई (1) प्रेस के दमन के लिए एक नया प्रेस बिल बना । इस वक्त जो कानून मौजूद था उसके द्वारा भी सरकार पत्रों की जबानबंद कर सकती थी, उसकी हस्ती मिटा सकती थी । लेकिन एक नया कानून बनाकर अधिकारियों को यह अधिकार दे दिया ग या कि वे जिस पत्र को चाहे कुचल डालें और सरकारी नीति को निष्पक्ष आलोचना करने के लिए भी पत्रों को दंड दे सकें । और यह कानून उस वक्त बनाया जा रहा है, जब भारत को स्वराज्य देने की बातचीत हो रही है। (2)

---

1. पट्टाभिसितार मैया: भारतीय कांग्रेस का इतिहास, पृ.197
2. प्रेमचंद: विविध-प्रसंग" पृ: 82

स्वराज्य मिलने के बाद भी साहित्य और पत्रकारिता के खतरे समाप्त नहीं हो गए अपितु नए रूप में सामने आए। जिसका आभास "प्रगतिशील" प्रवृति के सामानातर अपनी {प्रयोगशील} प्रवृति के विकास के साथ 1943 में ही मिलने लगा था ।

"स्वतन्त्रता प्राप्ति" के बाद तो प्रगतिशील आंदोलन का संगठित रूप से विरोध आरंभ हो गया । इस चरण में "प्रगतिशील लेखक संघ" "सामंतवाद-विरोध को लक्ष्य-संधार कर संघर्षरत् था । किन्तु सामंतवाद का विरोध बहुतों के लिए अहितकर था अतः उन्होंने "संघ से नाता तोड़ कर इसका विरोध अलग-अलग संगठनों- मंच से आरंभ किया ।

साहित्य में प्रगतिशील परंपरा के विरोध विरुद्ध नए प्रयोग करने जैसे रूपवाद- हिमायती तथा "राजनीति, साहित्य व समाज" के संबंध का विरोध करने जैसे, कलावादी" एवं, , व्यक्तिवादी नारे बुलंद हुए और ऐसे ही साहित्य की रचना होने लगी । { । }

प्रगतिशील साहित्य को प्रोपोगैंडा {प्रचार साहित्य} तथा प्रगतिशील साहित्यकारो को असाहित्यिक पेशेवर प्रोपेगैंडिस्ट, प्रवाहपंथी, उच्छृंखलतावादी आदि {2} कहा गया । साहित्यिक वातावरण में इससमय {प्रगतिवादी} तथा "प्रगतिविरोधी" दो प्रकार के विरोधी प्रवृत्तियों का संघर्ष हावी था ।

<u>प्रयोगवाद</u>

प्रयोगवादी काव्यधारा का प्रथम उन्मेष था "तार सप्तक" जो भारती ने इसा काव्याधारा को मंच देने के लिए "परिमल" की स्थापना की । इसके बाद तो प्रयोगवाद के समर्थन में कई संकलन एवं पत्रिकाएं प्रकाशित हुई । यहां तक कि "प्रयोग" को लक्ष्य बनाकर कई नए "वाद" जन्में । ऐसा ही एक गुट था "नकेन" जिसने अपने आंदोलन को असली "प्रयोगवाद" तथा पूर्व प्रचलित काव्यधारा को "प्रयोगशील" कहा ।

---

1. "रूस की सफलता, युद्ध की विभीषिका, बढ़ते दमनचक्र ने यह अवस्था उत्पन्न कर दी थी, जिसमें भाव-प्रबलता से प्रेरित स्वच्छंद कल्पना काम नहीं कर पाती थी । अब तो आक्रोश और विद्रोह का अनगढ स्वर समीचीन था या फिर अंतर-अहं की गुफा में लीनक्षयी रोमांस के गीत गम गलत कर सकते थे-देवीशंकर अवस्थी" परंपरा का विकास

{ युगचेतना, मई 58 पृष्ट 18 }

2. रेखाअवस्थी, प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य पृष्ट 28 {

TH-1659

O,152 "m "N80 ← N60

Diss
152M5

इस बाद को -नकेनवाद"या"प्रपद्यवाद"संज्ञाबाद में दी गई । इस "नेक्स" के संस्थापक थे-नलिन विलोचन शर्मा, केसरीकुमार तथा नरेश । 1952 में अपने वाद के समर्थन में प्रकाशित की गई पत्रिका "प्रकाश" में संपादक नरेश ने घोषणा-पत्र के दस सूत्र प्रकाशित किए । [1] 1956 में "नकेन का प्रपद्य" प्रकाशित हुआ । परन्तु प्रगतिशील साहित्यक धारा के साथ-साथ [पूर्ववर्ती] "प्रयोगवादी" धारा इस समय तक निरंतर चलती रही । जबकि,कविता और कला के प्रति अपने नकारात्मक ,यांत्रिक व प्रचारात्मक दृष्टिकोण के कारण "प्रपद्यवादी"धारायही समाप्त हो गई ।

प्रयोगवाद के समर्थन में प्रकाशित पत्रिकाएं/संकलन

तार सप्तक- 1943 सं0 अज्ञेय
दूसरा सप्तक-1951 सं0 अज्ञेय
तीसरा सप्तक- 1959 सं0 अज्ञेय
प्रतीक - 1947 सं0 अज्ञेय
संगम - 1942,इलाचंद्र जोशी,इलाहाबाद
विचार/राष्ट्रवाणी/पाटल
प्रकाश -1952,नरेश
कल्पना- 1948,बदरी विशाल पिती
आलोचना- 1951, शिवदानसिंह चौहान

प्रयोगवाद,प्रपद्यवाद की धुंध छंटने के बाद जो प्रवृत्ति साहित्य में प्रबल हुई वह थी -"नयी कविता/नई कहानी/यद्यपि इसके बीज 1950 के बाद से मिलने लगे थे परन्तु 1955 में इसने एक आंदोलन का रूप लिया । प्रयोगशीलता धुंधली पड गई, यथार्थोन्मुख दृष्टिकोण परिलक्षित होने लगा ।

---

[1] 1. "प्रयोगवाद भाव और व्यंजना का स्थापत्य है ।
2. सर्वतंत्र, स्वतंत्र है,उसके लिए शास्त्र या दल निर्धारित नियम अनुपयुक्त है ।
3. पूर्ववर्तियों की परिपाटी को भी निष्प्राण मानता है ।
4. दूसरों के अनुकरण की तरह अपना अनुकरण भी वर्जित समझता है ।
5. को मुक्त काव्य ही नहीं रचच्छंद काव्य की स्थिति अभीष्ट है ।
6. प्रयोगशली प्रयोग को साधन मानता है, प्रयोगवादी साध्य ।
7. प्रयोगवाद के लिए जीवन और कोष कच्चे माल की खान है ।
8. प्रयोगवादी प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छंद का स्वंय निर्माता है ।
9. प्रयोगवाद की दृक्वाक्यपदीय है ।
10. प्रयोगवाद दृष्टिकोण का अनुसंधान है ।
11. प्रपद्यवाद मानता है कि पद्य में उत्कृष्ट केन्द्रण होता है और यही गद्यऔर पद्य में अन्तर है ।
12. प्रवद्यवाद मानता है कि चीजों का एकमात्र सही नाम होता है ।"

1-10 सूत्र 1952 "प्रकाश" पत्रिका
11,12 "नकेन का प्रपद्य" पृ॰- 115

नयी कविता

"नयी कविता" के आरंभ के विषय पर विद्वानों में मतभेद हैं । पंत ने "छायावाद" से नयी कविता का आरंभ माना ।1। कुछ विद्वान "दूसरा सप्तक" ।1951। में इसके अंकुर मानते हुए इन रचनाओं का हवाला देते हैं जो इस काव्य संकलन के बाद-प्रतीक,पाटल, नया साहित्य, नया पथ तथा हंस"आदि पत्रिकाओं में छपी । जबकि डा0 शिवकुमार मिश्र ने 1955 से आरंभ माना । ।2। 1953 में "नए पत्ते" तथा 1954 में नयी कविता पत्रिका को भी इस आंदोलन को शुरू करने का श्रेय जाता है ।

नयी कविता के पुरस्कर्ताओं की मुख्य घोषणा "स्वीधीनता" थी । "नया कवि"वादों"और गुटों"के फेर में न पड़कर अपना स्वतंत्र चिंतन करें । स्वतंत्रता के नारे के पीछे की राजनीतत का मुख्य उद्देश्य था-बढती हुई वामपंथी राजनीति का विरोध करना । "तीसरा सप्तक" तक प्रयोगवादी अज्ञेय भी इसी आंदोलन में शामिल हो गए थे ।।3।

नयी कविता,एक ओर तो बदलते हुए सामाजिक यथार्थ को पकड़ने की घोषणा करती रही तो दूसरी तरफ ऐसे साहित्य का सृजन करती रही जो समाज का यथार्थ न होकर व्यक्ति सापेक्ष यर्थाथ होता । जिसका कारण ये था कि वर्तमान व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के रहते वे यह पहचान कर पाने में असमर्थ थे कि इस असंतोष का कारण तथा निदान क्या है ? महानगरीय संस्कृति के आतंक व संत्रास को भोगते हुए इनके भीतर निरंतर क्षोभ और विद्वेष विकसित होता रहा । किन्तु वैज्ञानिक जीवन दृष्टि के अभाव में,या तो वे असहाय होकर स्थितियों के प्रति केवल अपने दुःख का भाव पुञ्ज करते या फिर ऐसे संसार की ओर ले जाते जिसमें या तो मांसल सौन्दर्य की छटाएँ या अकेलेपन की चीत्कार होती । देश और समाज की सक्रिय स्थितियाँ उन्हें आंदोलन या परिचालित नहीं कर सकीं । वे संक्षेप में,वे अपने सामाजिक दायित्व के प्रति उपेक्षाशील रहे और जीवन को न देखकर अपनी व्यक्तिगत भाव-चेतना या पुस्तकीय ज्ञान के घेरे में बंधे रहे ।।।4।

नयी कविता आंदोलन में शामिल रचनाकारों की जीवन दृष्टि एक सी नहीं थी इनमें कुछ रचनाकार निरंतर इस कविता की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का विरोध करते हुए, यथार्थपरक साहित्य के सृजन मे रत् थे । एक ओर अज्ञेय जैसे कवि पश्चिमी व अस्तित्ववादी पतन शील संस्कृति के प्रभाव में नितांत व्यक्तिवादी मूल्यों का सृजन कर रहे थे तो दूसरी ओर रघुवीर,सहाय,केलाशवाजपेयी,सर्वेश्वर,केदारनाथ सिंह,शमशेर मुक्तिबोध,दुष्यंत कुमार,परमानंद श्रीवास्तव,अशोक वाजपेयी जैसे रचनाकार सामाजिक

---

1. पंत,"नयी कविता" अंक 1,पृ0-3
2. शिव कुमार मिश्र: नया हिन्दी काव्य,पृ॰319
3. भूमिका,तीसरा सप्तक ,पृ॰ 14
4. नंद दुलारे वाजपेयी,नई कविता पृ॰78

यथार्थ से प्रेरित होकर प्रतिबद्ध साहित्य की ओर बढ़ रहे थे ।

इस आंदोलन के समर्थक पत्रिकाओं की बाढ़ सी आ गई । इस दौर की पत्रिकाओं ने जिस आंदोलन का रूप धारण किया वह परवर्ती काल में "लघु -पत्रिका" की परंपरा से जाकर जुड़ता है ।

नए पत्ते- लक्ष्मीकांत वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, 1953
नयी कविता- जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, 1954
निकष- धर्मवीर भारत, लक्ष्मीकांत वर्मा, 1955
कविता- नलिन विलोचन शर्मा
क्षितिज- रामबहादुर सिंह मुक्त
सुप्रभात-शरद देवड़ा, पृथ्वीनाथ शास्त्री
प्रतिकल्पा/संध्या-महेन्द्र भटनागर
कवि - विष्णुचंद्र शर्मा
कृति -नरेश मेहता, श्रीकांत, 1958
वसुधा- हरिशंकर परसाई
आस्था- रामसेवक श्रीवास्तव
लहर- मनमोहिनी, प्रकाश चंद जैन
सीमांत- नागार्जुन, खगेन्द्र प्रसाद
युगचेतना -देवराज, कुंवर नारायण
राष्ट्रवाणी- गो॰पो॰ नेने
आजकल" देवेन्द्र सत्यार्थी

संकलन- विद्वान/समवेत/विविधा/अपरंपरा/संकेत

## लघु पत्रिकाआंदोलन- प्रथम दशक (60 से 70)

"आपने दस वर्ष हमें और दिए···
हमें डर नहीं लगता कि उखड़ न जावें कहीं ।
हमारे पास सत्य के मसीहा तो
हमारे मरते ही,बंधु आप बन जाएंगे । (1)

प्रयोगवाद के सृष्टा"अज्ञेय" का "नयी कविता" पर यह विश्वास यूं ही नहीं थी ।"नयी कविता"आंदोलन ने वास्तव में ही अपने भीतर प्रयोगवाद और छायावाद को जीवित रखा । यही कारण है कि "छायावादी"पंत और "प्रयोगवादी"अज्ञेय दोनों ही ने इसे अपनी परंपरा की अगली कड़ी स्वीकार किया । (2) परन्तु भावनात्मक जड़ता तथा आत्मग्रस्त मूल्यों में फंसकर,बहुतशीघ्र ही नयी कविता ने अपनी सामाजिक इयत्ता खो दी । यह घटना सन् 1960 के लगभग घटी, जब युगीन यथार्थ संघर्ष को व्यक्त करने में नई कविता के मूल्य" अपर्याप्त सिद्ध हुई, ये महसूस किया जाने लगा कि कविता अप्रासंगिक होती जा रही है । लेखक यथार्थ जो कहना चाहता है वह मनोहारी काव्यशैली में व्यक्त नहीं हो सकता, क्योंकि यथार्थ उतना मनोरम नहीं है । इस यर्थाथ की साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए नई शैली-शब्दों की तलाश सन्"60 के बाद निरंतर जारी रही । परिणाम स्वरूप सामने आए कई वाद,कई पीढ़ियां और 'किसिम किसिम की कविताएं'(3) अकविता (अकहानी) बीट कविता, भूखी पीढ़ी, श्मशानी पीढ़ी,युयुत्सावाद,कबीर,विद्रोही,नूतन,लाजी,अस्वीकृत,सहज, बीट,नंगी,ठोस-कविता,सनातन सूर्योदयी कविता,लिंग्वादल-मोतवादी,-आदि हर संभव "विशेषणों" के साथ एक नए आंदोलन की घोषणा हुई भले ही ये आंदोलन एक कवि या एक कविता तक ही सीमित रह समाप्त हो गया हो ।

"हर बार एक परंपरा का नकार, हर बार "नए" की तलाश-"60 के लगभग जन्मी इस साहित्यिक प्रवृत्ति से " उस समय बुद्धिजीवियों, बल्कि प्रत्येक युवा की भ्रमित, किंकर्तव्यमूढ़ मनः स्थिति का अंदाज लग सकता है । किसी एक व्यक्ति या वर्ग नहीं उस युग के संपूर्ण समाज की यही चारित्रिक विशेषता थी । स्वतंत्रभारत की एकदलीय प्रभुसत्ता की जिस राजनीति का वह समाज साक्षी था वही साहित्य में भी अभिव्यक्ति पा रही थी । आखिर रचना का भी उत्स वही समाज था । राजनीतिक जड़ता और मोहभंग के कारण उत्पन्न आक्रोश व विद्रोह "युवाओं" में भरा पड़ा था । ये "युवा" स्वतंत्रता के बाद जन्मी वह पीढ़ी थी जिसने अपने जन्म से ही "स्वदेशी शासकों का शासन देखा था।

---

1. "नयी कविता-2" अज्ञेय"नयी कविता: संभाव्य भूमिका"
2. पंत: "नयी कविता"।" अज्ञेय: भूमिका, तीसरा सप्तक (1959)
3. लेखा, जगदीश चतुर्वेदी, "नयी कविता-8"

इस "नव बुद्धि जीवी" को विश्व स्तर में हुए परिवर्तनों का भी ज्ञान हासिल था । अन्य देशों से तुलना करते हुए, अपने देश की व्यवस्था से असंतुष्ट थे । अतः किसी बेहतर व्यवस्था की तलाश करते हुए इनका एक ही परम लक्ष्य था- इस व्यवस्था का विरोध, यद्यपि विकल्प न था ।

"एक छिल की तरह जैसे गिरी है स्वतंत्रता
और पिचक गया है पूरा देश,
थोड़े से पेशेवर जुआरी,
नहीं नहीं सत्ताधारी
खेलते है खेल सांप सीढ़ी का
सीढ़िया सब उनकी हैं । ॥ 1 ॥

" आजादी" मिले हुए बारह वर्ष बीत चुके थे , दो पंचवर्षीय योजनाओं के रूप में "सुदृढ अर्थव्यवस्था" के सुनहरे सपनों भारत की मध्य व निम्न वर्गीय जनता देख चुकी थी, किन्तु आशा और आकांक्षाओं के अनुरूप फल नहीं निकल सके । तब नेहरू युग का आकर्षण ढलने लगा । सरकारी नीतियों की असफलताएँ सामने आने लगी "हरित क्रांति॥ से ग्रामीण धनिकों की ही स्थिति और बेहतर हुई, गरीब किसानों की स्थिति में सुधार लाने में यह योजना असफल रही । ॥ 2 ॥ दूसरी पंचवर्षीय योजना में उद्योगों पर विशेष बल दिया गया था किन्तु वहां भी एकाधिकार और पूंजी केन्द्रीयकरण ही अधिक हुआ । ॥3॥ औद्योगिक विकास की आर्थिक नीतियां उद्योगपतियों के लिए वरदान सिद्ध हुए जनसाधारण के लिए अभाव मंहगाई, बेरोजगारी और आय की विषमता ज्यों की त्यों बनी रहीं । दूसरी योजना के समाप्त होने से पहले ही खाद्य पदार्थों की भारी कमी और तकनीकी पिछड़ेपन से उत्पन्न संकट को दूर करने के लिए भारी मात्रा में खाद्यान्न का आयात हुआ और विदेशी सलाहकारों और "नो- हाऊ" ही का निर्यात नहीं हुआ, आस्थाओं और मान्यताओं का ह्रास करने वाली पतनोन्मुख साम्राज्यवादी सभ्यता की घुसपैठ भी बड़े पैमाने पर हुई । ॥4॥ 1962 में अमरीकी "बिटनीक" पीढी के वैशाज " गिन्सबर्ग" कलकत्ता, भारत भ्रमण पर आए । जिनसे बंगला युवाओं का एक वर्ग अत्याधिक प्रभावित हुआ, और " भूखी पीढी" का आविर्भाव हुआ । इसी "भूखी पीढी" के प्रभाव विस्तार भारत में "नंगी, श्मशानी" आदि आदि पीढियों के रूप में हुआ ।

---

1• "कैलाश वाजपेयी, कल्पना, अप्रैल "61"

2: तीसरी पंचवर्षीय योजना, अर्थ-नात्मक सर्वे" भारत सरकार, 1975-76

3• 1965 में एकाधिकारी जांच आयोग के अनुसार-क्षेत्र की कुल पूंजी का 50% केवल 75 व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में केन्द्रित था । उदाहरण के लिए-टाटा ग्रुप की 1951 को 95 करोड की कुल पूंजी, 16 वर्षों में 505 करोड हुई। बिड़ला की 1951-51करोड, 1966 में 458 करोड । भंगिमा"75 पृ• ॥25॥

4• हंसराज रहबर, संचेतना"77 पृ•99

राजनीतिक घटनाओं की दृष्टि से भी यह दशक अत्यंत महत्त्वपूर्ण था । सत्ताधारी कांग्रेस में आपसी मतभेद और गुटबंदी बढ़ती जा रही थी" विभिन्न क्षेत्रीय पार्टियों का उदय हो रहा था,पश्चिम बंगाल,केरल,आन्ध्र में कम्युनिस्टों का प्रभावक्षेत्र कायम था । भारत भर में कम्युनिस्टों का प्रभाव बढ़ रहा था । विभिन्न राज्यों में क्रान्तिकारी आंदोलनों का नेतृत्व कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में हो रहा था-पंजाब में सम्मुन्नति {बैटरमेंट} कर के मुद्दे पर किसान संघर्ष,बंबई में भाषाई आधार पर महाराष्ट्र व गुजरात में पुनर्गठन की लड़ाई । मद्रास के कुछ भागों में भूमिहीन श्रमिकों और गरीब किसानों का सहयोग,प0बंगाल में खाद्यान्न आंदोलन कीमतों में कमी तथा अन्य कई मुद्दों पर संघर्षों में भाग लेकर इसने मजदूर-किसान मध्यवर्गीय कर्मचारियों और छात्रों की बीच अपने संगठनों को मजबूत बना लिया था । सामान्य तौर पर भारत में {कम्युनिष्ट पार्टी का} चुनाव समर्थन 1952 के 4% की तुलना में 1962 में 9% हो गया था । पार्टी कई नगरों और कस्बों में शासन ठप्प करने और हड़ताल या बन्द {आम हड़ताल} के अपने आह्वान के समर्थन में हजार लोगों को लाने का सामर्थ्य रखती थी ।

1964 में भारत चीन सीमा संघर्ष की दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी जिसको शासक वर्ग ने कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार के लिए इस्तेमाल किया । "युद्धोन्माद"को भड़काकर कम्युनिस्ट पार्टी के दमन का भरपूर प्रयास किया गया । पार्टी सदस्यों को"देशद्रोही" कहकर उनपर अत्याचार ढाए,गिरफ्तार किया ।

1965-66 में पुन: युद्ध की स्थिति बनी, इसबार पाकिस्तान से युद्ध हुआ। संभवत: इस युद्ध ने"कम्युनिस्ट विरोध" के उन्माद को कम करने में मदद की । क्योंकि 1967 में कम्युनिस्ट प्रभाव बढ़ने के लक्षण दृष्टिगत होते हैं । और "शासक-कांग्रेस"दल कमजोर होता है । इस बीच,1964 में विभिन्न मुद्दों पर मतभेद के बाद "कम्युनिस्ट पार्टी" का भी विभाजन हुआ । {1} यद्यपि इसके बावजूद इनका प्रभाव क्षेत्र कम नहीं हो पाया ।

कांग्रेस के बीस वर्ष के शासन के बावजूद देश में गरीबी,भुखमरी की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही । आजादी के बाद,व्यापक मोहभंग की पहली बार,भारतीय जनता ने प्रमाण, 1967 के आम चुनावों में दिया । देश की जनता में"गैर कांग्रेसवाद" का नारा लोकप्रिय हुआ,कई राज्यों में,केन्द्र के विरुद्ध"संविद" सरकारें अस्तित्व में आईं । प0बंगाल में वामपंथी संयुक्त मोर्चा सरकार बनी । "संविद"सरकार भी जब अपना शासन सफलतापूर्वक पूरा न कर सकी तो भारतीय जनसाधारण में और निराशा उत्पन्न हुई । इसका फायदा उठा "राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग"- कांग्रेस ने"छोटी-छोटी क्षेत्रीय पार्टियों को अपने साथ मिला तथा"समाजवाद" का नारा लगाकर। "समाजवादी" मुखौटा लगाकर वह जनता को छलने में सफल हुई तथा पुन: सत्तारूढ़ हुई ।

सब तरफ असफलताएं-निराशा, यथास्थिति के बरकरार रहने से युवावर्ग हताश था, सब पर अविश्वास,सब कुछ बेकार की मन:स्थिति बन गई थी ।

---

1. "भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी" से अलग होकर"भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी {मार्क्सवादी} बनी । 1964

"कितना अच्छा है अब
सभी झूठ बोलते हैं
कितना अच्छा है अब
सभी घृणा करते हैं
अपरिचय के माध्यम से जुडते हैं,
अपरिचित बिछुडते हैं ।
कितना अच्छा है अब
सब धोखा देते हैं
अविश्वास करते हैं । [1]

युवा एवं बुद्धिजीवियों का एक वर्ग ऐसा भी था जो अपने युग की घटनाओं से कुछ सीख रहा था तथा जिसकी मनःस्थिति किसी बडे उद्देश्य ,परिवर्तन के लिए तैयार हो रही थी ऐसे वर्ग के लिए 1967 से आरंभ होने वाला"किसान संघर्ष" एक आदर्श था । 1967 से पश्चिमी तंजौर में तथा फिर आंध्र में हैदराबाद के निजाम के खिलाफ "किसानों का सशस्त्र विद्रोह ऐसा ही एक आदर्श था, जो लगभग चार वर्ष के क्रांतिकारी संघर्ष में पं0 बंगाल तथा आंध्र के बहुत से हिस्सों में फैल गया । इस विद्रोह ने सभी देशवासियों को संगठित विद्रोह और किसान-मजदूरों की शक्ति का बेहतरीन उदाहरण दिया । साथ ही वामपंथ और मार्क्सवाद की ओर बुद्धिजीवियों का विश्वास जमाया । जिसका आठवें दशक के साहित्यिक आंदोलन में प्रसार हुआ ।

अंतराष्ट्रीय पैमाने पर इस दशक में सबसे प्रभावकारी घटना थी"वियतनाम" का मुक्ति संघर्ष । जिसने 1965 के बाद एक नए दौर में कदम रखा,जब अमरीका ने एक बडी फौज के साथ इस लडाई में सीधा हस्तक्षेप किया । वियतनाम जैसे छोटे से देश के लिए दुश्मन भारी विनाश की क्षमता रखने वाला था । वियतनाम की बहादुर जनता के साहस और संकल्प का मुकाबला बेहतर फौजी ताकत से था । पूरे विश्व के लिए यह मुददा एक नैतिक मुददा बन गया । 1968 के टेट काग्रमण ने दुनिया के सामने वियतनामियों की अजेयता साबित कर दी । 1968 में ही "छात्र शक्ति" कापरिचय देते हुए विश्व में कई आंदोलन हुए। इनमें से एक पेरिस में हुआ,जहां"जनरलद गाल" के नेतृत्व वाली फ्रांसं सरकार को"छात्र आंदोलन ने लगभग गिरा दिया । पश्चिम यूरो,अमरीका और साथ-साथ जापाने में,हर जगह विश्वविद्यालयों में विद्रोह हुए,छात्रों ने अपने पाठ्यक्रमों की परीक्षा-मुखी प्रकृति के खिलाफ बगावत की,कुशल अधिकारियों के लिए व्यापारिक प्रतिष्ठानों तथा पाठ्य-क्रमों की अंतर्वस्तु के बीच के सम्बन्धों के प्रति नाराजगी दिखाई और शिक्षा व्यवस्था के मूलभूत पूंजीवादी मुल्यों पर सवाल उठाया [2]

---

1•कैलाश वाजपेयी,"प्रारंभ" पृ0-43

2• विप्लवदास गुप्त: नक्सलवादी आंदोलन,पृ• 222

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर"नव वाम पंथ"{न्यूलैफ्ट} कहलाने वाला छात्र आंदोलन हुआ। जिसने कम्युनिष्ट पार्टियों से अलग होकर,बाहर से राजनीतिक व्यवस्था को प्रयत्न किया। यह आंदोलन अपने आप में एक राजनीतिक शक्ति बन गया था यद्यपि संगठनिक रूप से यह देशों में एक सूत्र नहीं था- उनमें से कुछ ने मार्क्सवाद के प्रति आस्था व्यक्त की,अधिकांश बिना मार्क्सवादी हुए ही "क्रान्तिकारी "थे। देश-विदेश में "छात्र व युवा" आंदोलनों के माध्यम से अपने रोष और विरोध प्रकट कर रहे थे। वियतनाम युद्ध की वीरता,"नव-वामपंथ" द्वारा प्रस्तुत छात्र शक्ति और क्रांति की धारणा ने भारत में छात्रों के दिमाग पर शक्तिशाली प्रभाव डाला। अनेकों "नक्सलवाद" के समर्थक बन गए। 1969 में "भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी {मार्क्सवादी} से अलग होकर "भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी{मार्क्सवादी-लेनिनवादी} अस्तित्व में आई।

इस प्रकार,देश और विदेश सभी जगह "युवा अक्रोश"उत्पन्न होने के पर्याप्त कारण एवं लक्षण दृष्टिगत होते है। देश में-बढती आर्थिक समस्याएं-प्रतिव्यक्ति आय और खुराक में कमी{1},बेरोजगारी तेजी से बढी{2} औद्योगिक विकास अवरूद्ध हुआ तथा बुरी फसलों,विशेषकर 1967 के बिहार में पडे अकाल के बाद अर्थव्यवस्था अमरीकी आयात पर निर्भर हुआ {। करोड टन अन्न पी·एल·480 के अंतर्गत आयात किया गया},विदेशी सहायता पर निर्भरता बढी{तीसरी योजना के बजट में विदेशी सहायता का अंश। एक तिहाई था}-सभी छोटी-बडी घटनाएं,युवा-मानस पर छाप छोड रही थीं, संसार भर में "युवा-संघर्षों" से उसका हौसला बढ रहा था।

विभिन्न घटनाओं तथा युवा-मनःस्थिति के आधार पर दो चरणों में इस दशक को बांटा जा सकता है। पहला चरण है 1960-66 तक जब साहित्य और राजनीति में मूल्य हीनता व्याप्त रही।दूसरा दौर है"66 के बाद जनवादी आंदोलन और साहित्य के जनवादीकरण के विकास का एक वर्ग की धारणा थी-"सब कुछ असाध्य है/सोचता हूं/सोचनाछोड दूंगा{3} जिसके हिमायती जगदीश चतुर्वेदी,श्याम परमार, मोना गुलाटी,सौमित्र मोहन जैसे अनेक वाद" पीढी" के हिमायती रचनाकार है।

---

1· "40 से 60% के बीच लोग निर्धनता रेखा से नीचे जिंदगी बसर कर रहे हैं" पावर्टी इन इंडिया:डाइमैंशन एंड ट्रेंड्स, वी·एस·व्यास,1971

-एक चौथाई आबादी अल्प पोषण,और लगभग आधी आबादी कुपोषण की शिकारी है"पी0बी0सुखातने:फीडिंग इंडियास ग्रोइंग मिलियन,1965

2·"बेरोजगारी की तादाद बढी और डाक्टरों,इंजिनियरों तथा दूसरे स्नातकोंकी बढती संख्या को नौकरी पाना कठिन लग रहा था{चूंकि सरकार ने बेरोजगारी संबंधित आंकडे प्रकाशित करने बंद कर दिए है, इसलिए कोई भी आंकडा नहीं दिया जा सकता}" बेरोजगारी का अध्ययन करने के लिए बनी कमेटी की रिपोर्ट,भारत सरकार,खंड-1 तथा 2,1972

3· जगदीश गुप्त

दूसरा वर्ग"एक समझदार चुप" और"एक इंकार भरी चीख" के बीच रास्ता निकालती हुई शब्दों की दुनिया में"यातना के खिलाफ,मुहं खोल"रहे है,जैसे-लीलाधर जगूडी,कुमार विकल, धूमिल,राजीव सक्सेना आदि,जो आजादी से लेकर अपने युग की परिस्थितियों तक की आलोचनात्मक-व्यवस्था करने का प्रयास कर रहे थे-

"क्या आजादी सिर्फ तीन थेके हुए रंगो का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है । ‖1‖

<u>निषेधों की वर्णमाला में/ रची गई ध्वनियां</u>

हमारे पूर्वकालीन साहित्यिक
निश्चिंत रहे
हम उनके अति नियोजित, रोमांटिक साहित्य पर
पहले ही अपने लोटे
उंडेल चुके हैं ।
अब ॠण मुक्त हैं । ‖2‖

इस ऐलान के साथ 1960 के आरंभिक दशक के काव्यांदोलनों के अग्रजों ने अपने को "प्रयोगवाद, नयीकविता, नवलेखन" की पूर्ववर्ती परंपरा से स्वंय को अलग किया "नयी कविता" या फिर "कविता" मात्र के ही विरोध में कई काव्यांदोलन आरंभ हुए, और इन आंदेलनों के प्रचार-प्रसार के लिए प्रकाशित हुई उनके पत्रिकाएं । इन आंदेलनों के "अलग" नामों को मई छोड दिया जाए, तो प्राय: सभी का "स्वर" एक ही मिलता है, अधिकांश आंदोलन कविता-कैंन्द्रित हैं ।

"सर्वोन्मुखी "निषेध" के मूल स्वर वाले विभिन्न आंदोलनों का यह दौर आरंभ होता है 1962 से । "बीटनिक" अमरीकी "गिन्सबर्ग" के भारत आगमन से जिनके हिप्पी, उन्मुक्त जीवन ने अनेक बंगला युवाओं को प्रभावित किया ।"अमरीकी बीट संस्कृति" ‖3‖

---

1• धूमिल
2• ॠण मुक्त, बलदेव वंशी, आवेश । " 68
3• "सेन फ्रांसिस्को और न्यूयार्क में- अतिलक्ष्मी, अति विज्ञान, अति विलास, अतियौन स्वातंत्र्य, भौतिकवादी जीवन पद्धति से, नशाकर, नग्नरह और आसाधारण यौन आचरण के रूप में ‖ सामाजिक‖ विद्रोह करते हुए, कुछ अतिसम्पन्न घराने के कवि, आलोचक, अभिनेता, शिल्पकार- बीट संस्कृति जी रहें हैं ।
प्रभाकर माचवे, नयी कविता 78 •

का अनुसरण करते हुए बंगला साहित्य में भूखी पीढी"जन्मी । हिन्दी के कुछ बुद्धिजीवी भी इस उन्मुक्त जीवन पधति से प्रभावित हुए-इनमें "राजकमल चौधरी"प्रमुख है ।

इस प्रवृत्ति से भिन्न दृष्टि लेकर"युयुत्सावादी साहित्य आंदोलन की घोषणा हुई,"65 में"स्पांबरा"पत्रिका [1] के प्रकाशन के साथ अराजकता और दिशाहीनता के वातावरण में उन्होनें दावा किया कि युयुत्सावादी मानसिकता समकालीन रचनाशीलता के लिए नवीन व सही दिशा है, क्योंकि इसने प्रगतिशील जीवन मूल्यों को स्वीकारा है [2]विचाराधारा के स्तर पर इन्होनें स्वंय को मार्क्सवादि कहा किन्तु पत्रिका में प्रकाशित कुछ रचनाएं ऐसी भी है जिनका युयुत्सावादी घोषणाओं से कोई संबंध दिखाई नहीं देता,यहां तक कि कुछ भूखी पीढी और अकविता प्रवृत्ति की रचनाएं है-उदाहरण के लिए ये कविता-

सिसकियों की कांटेदार
सिढियों से उतरता हुआ
उन तीनों शहरों के बाहर
एक आकृतिहीन परछाई के गड×ड-मड्ड ढेर में
"मैं ढूंढ रहा हूं अपना नाम
यहां कवितांत के अंधेरे में ।" [3]

"श्मशानी पीढी" की विचारधारा का पोषण हुआ"विभक्ति [4] पत्रिका के द्वारा। भूखी पीढी के विरोध में यह आंदोलन कई स्थों में विकसित हुआ । आंदोलन का आंरभ हुआ एक श्मशान घाट में "कलकत्ता के नीमतल्लाश्मशान में एक मुरदे को अध्यक्ष बनाकर-सकलदीप सिंह,गोपाल जैन,निर्भय मलिक आदि कवियों ने कविताएं पढी तथा अवध नारायण सिंह नामक कहानीकार को सम्मानित अतिथि के रूप में गवाह बनाकर अपनी पीढी का नामकरण किया । [5]अपने युग और समाज के प्रति उनकी आस्था और विश्वास खत्म हो चुका था, इस जीवित जगत में कोई उन्हें इस योग्य नहीं लगा जिसके लिए वह कविता करते या जिसे कविता सुनाते"मुर्दा अप्रतिबद्ध होता है"

---

1. "स्पाम्बरा,सं0शलभ श्री राम सिंह, अप्रैल"65
2. "मैं साहित्य सृजन की मूल प्रेरणा के रूप में उसी आदिम युयुत्सा को स्वीकारता हूं जो कहीं न कहीं प्रत्येक क्रांति,परिवर्तन अथवा विघटन के मूल में रही है । वह युयुत्सा जिजीविषावदी मुमूर्षावादी,विद्रोहात्मक अथवा प्लेटोनिक कुछ भी हो सकती है "
   शलभ श्री सिंह,स्पांबरा,अप्रैल"66,पृ.25
3. चंद्रकांत देवताले,स्पांबरा,अगस्त"66,पृ,25
4. विभक्ति,सं0निर्भयमलिक,कलकत्ता
5. सुदर्शन चोपडासुरिता

"इसलिए शवसाधना द्वारा शवसाधना द्वारा शव को जगाने के इस प्रयास के लिए "कवियों ने सही जगह की तलाश कर ली"।1। चिंतन, राजनीति, पूर्ववर्ती साहित्य और सौन्दय बोध, नैतिक मूल्य सभी का विरोध करते हैं, श्मशानी पीढी ने अपने आंदोलन के एकदेशीय सीमा से परे कहा।2। आंदोलन का यह अंतर्विरोध है कि एक ओर उसने अमेरिका बीटनिक"बंगला की भूखी पीढी" का विरोध किया।3। तो दूसरी ओर अपने आंदोलन की इनसे समानधर्मिता प्रदर्शित की।।4।

इसीप्रकार के और कई आंदोलन कविता में चलाने के प्रयास हुए, जैसे-ताजी कतिवा, अगली कविता, सहज कविता, अस्वीकृत कविता, ठोस कविता, सहज कविता, नूतन कविता, नंगी कविता, बीर कविता, विद्रोही कविता सनातन सूर्योदयी कविता, लिग्वादल नेतावादी आदि। इस दौर के विभिन्न वादों, काव्यप्रवृत्तियों को देखते हुए"इसे"किसिम किसिम की कविता का युग कहा गया।

"अकविता"अकहानी"को आंदोलन भी"कविता के विरोध में कविता, और कहानी के विरोध में कहानी" के भाव से हुआ। इस आंदोलन को अन्य समकालीन आंदोलनों के मुकाबले अधिक प्रसिद्धि मिली ।तथा कविता कहानी के अलावा साहित्य की अन्य विधाओं में भी इसका प्रचलन हुआ, अनेकों पत्रिकाएं में इस प्रवृत्ति के साहित्य को प्रोत्साहन दिया गया"आवेश"अकविता"आदि अनेक पत्रिकाएं इस आंदोलन के समर्थन में प्रकाशित हुईं। इनके रचनाकारों में-सौमित्र मोहन, रमेश बक्षी, जगदीश चतुर्वेदी, मोना गुलाटी, श्याम परमार आदि नाम प्रतिष्ठित हुए।

कहानी के क्षेत्र में साठोत्तरी कहानी, समांतर कहानी, समानांतर कहानी, विकथा जैसे कुछ आंदोलन उठे। "सारिका" के माध्यम से कमलेश्वर ने"समानांतर कहानी को आंदोलन रूप देने का प्रयास किया।

---

1· विद्याधर शुक्ल, सनीचर

2· "हिन्दी की श्मशानी पीढी-शारीरिक स्तर पर जीवन से साक्षात्कार करने वाली यह पीढी विज्ञान के साथ होकर अब तक किसी संस्कृति साहित्य परंपरा के मूल्य को अस्वीकार करते हैं ×× पूर्ववर्ती साहित्य और सौन्दर्य बोध आदर्श और नैतिकता से ग्रस्त होकर सड चुके हैं×× श्मशानी पीढी का लक्ष्य निश्चित रूप से चिंतन के पूरे परिवेश को नकारना है×× चिन्तन न राजनीति के दायरे में कैद हो सकता है और न आज के संदर्भ में एक देशीय×× निषेध या अस्वीकृति नए प्रारंभ का आधार है, जब तक नकारा नहीं जाएं जब तक नई व्यवस्था उभरकर सामने नहीं आ सकती।

निर्भय मलिक, विभक्ति4, पृ·27

3· विभक्ति-1

4· "विश्वस्तर पर एक युवा पीढ़ी उभरकर सामने आई है। ××भूखी पीढी, बीटनीक पीढी, श्मशानी या कुछ पीढी या अन्य पीढी पीढियों में एक समानधर्मिता देखने देखने को मिलती है"

सकलदीप सिंह, विभक्ति 4पृ·23

प्राय: सभी आंदोलन "अल्पजीवी" रहे । जो स्वाभाविक ही था, क्योंकि जिस प्रवृत्ति से प्रेरित होकर ये-युगकाल के संदर्भ से कटकर मूल्यहीन साहित्य रच रहे थे वह अपने युग में ही अप्रासंगिक हो गया था । आंदोलनों की भरमार "नाम बदलकर" समानधर्मी रचनाओं ने साहित्य की गंभीरता ही नष्ट नहीं की थी अपितु साहित्य से समाज का विश्वास भी तोड़ा था । अतः इन नाना-नामधारी आंदोलनों को न पाठक ने गंभीरता से लिया, न आलोचकों की इसकी व्याख्या में कोई दिलचस्पी रही । प्राय: इन सबके "संपूर्ण नकार, किसी भी प्रकार की व्यवस्था, रूढ़ि, परंपरा मूल्य, विचारधारा का विरोध करने वाली, सेक्स के प्रति आग्रही, दृष्टिकोण रखने वाले-मध्यमवर्गीय या पेटी बुर्जुआ वर्ग के बुद्धिजीवियों की विचारशून्य दिशाहीन मन:स्थिति को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य" कहकर एक ही गुट में शामिल कर लिया जाता है ।

यदि हिन्दी की 60-70 छोटी पत्रिकाओं पर सरसरी नजर भी डाली जाए तो लगता है, एक रचनाकार नंगा होना चाहता है, दूसरा जड़ होना चाहता है, तीसरा संभोग करना चाहता है, चौथा लड़ना चाहता है, पांचवा रूठकर या तो जंगल में जाना चाहता है या श्मशान में...।" §1§ ऐसा भी हुआ कि एक ही लेखक नया आंदोलन खड़ा कर लेता कई आंदोलनों की हिमायत करता रचना लिखता था कहीं कोई इस तरह के अति उत्साही रचनाकारों की संख्या बहुत अधिक थी।" एक ही लेखक लगभग एक ही समय में नयी कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी, विकथा, भूखी पीढ़ी की कहानी; नयी, ताजी, श्मशानी कविता लिख रहा हो तो उसकी साहित्यिकता या व्यावसायिकता के प्रति उत्साह आधिक्य में दो मत नहीं होना चाहिए । §2§ इस उत्साह को प्रदर्शित करने वाली, कुछ पत्रिकाएं जो इन आंदोलनके समर्थन में प्रकाशित हुई -

कविता दैनिक, कविता धंटकी, क्षुधा, क्षुधार्त प्रतिरोध पू:, जठर, जेब्रा उन्मार्ग, प्रतिद्वंदी, हंग्री, एस·एफ-, बलावटो । §भूखी पीढ़ी की समर्थक§

संक्रामक, निषिद्ध, नीलपत्र अक्षर, बिम्ब, आमुख, मिज्या, स्पाम्बरा, युयुत्सा

अद्यतन, अकविता, आर्यंत, एकांत, असली कविता, अर्थ, बिन्दु, कैक्टस, कृतिपरिचय नागफनी, केन्द्र, कहानीकार, धारा, दीपन, दृष्टिकोण, इकाई, क्रमश: कविता, महादेश, मंतव्य, नयाउपन्यास, नाटक, नई कविता, नटरंग, निष्ठा, नीरा, उन्मेष, वातायन, रचना विहंगिनी, विधा, विकल्प, अनास्था, अप्रस्तुत । §3§

---

§1§ डा0इन्द्रनाथ मदान, "लहर"

§2§ ऋषिकेश-"संचेतना" ।

§3§ सन् "60 तक "कहानी" तथा उसके बाद "नई कहानिया" पत्रिका के माध्यम से हिन्दी कहानी का आंदोलन आगे बढ़ा ।

कृतिवास {बंगला}, दिंबर, कबुल के {तेलगु}, झंकार, दिगंत {उडिया} {उसी} {मराठी} इन आंदोलनों की अन्य भाषाओं की पत्रिकाएं हैं ।

इन पत्रिकाओं के वैचारिक मुद्दे, आंदोलन की प्रकृति के अनुरूप रहे । चूंकि विभिन्न आंदोलन एक समान विशिष्टता धारण किए था, अत: इन पर एक साथ विचार करना ही उचित होगा । "निषेध की मुद्रा" जैसे नारों का इन प्रवृत्तियों के लिए प्रचलन हुआ । इनके विरोध, निषेध के विभिन्न स्तर क्या थे ? १· किसी प्रकार की प्रतिबद्धता या राजनीति से विमुखता"-इस ध्येय के पर्याप्त कारण तत्कालीन अराजनीतिक विसंगतियों में "मिल जाएंगे । जहां नित नए छलावों का राजनीतिक माहौल ही इन्हें मिला । कोई भी राजनीति, घटना इन्हें प्रभावित न कर सकी । व्यवस्था की असफल नीतियों से ये निराशा, हताश थे -

हमें धर्म विपन्न बना चुके है
हमें राजनीति विपन्न बना चुकी है
राष्ट्र विपन्न बना चुके हैं
वाद विपन्न बना चुके हैं
हम सब खो गये हैं । {1}

"सब कुछ खो गया है" जैसी दिशाहीनता सर्वत्र व्याप्त है । इस दुनिया में जो कुछ भी है वह जीने लायक नहीं है, उसमें इनकी कोई आस्था नहीं थी इसलिए अब जरूरत थी एक इस दुनिया के समानांतर, एक नई दुनिया की स्थापना की । रमेश बक्षी ने "आवेश" पत्रिका का प्रकाशन भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया "आवेश दूसरे शब्दों में "काउंटर वर्ल्ड" है जो तथाकथित दुनिया की प्रतिक्रिया से जन्मा है" {2}

विचारहीनता विद्रोह का प्रतिमान बन गई थी-

"जब सभी कुछ
उल ही जलूल है
सोचना फिजूल है" {3}

व्यवस्था राजनीति, विचारधारा आदि का विरोध करते हुए येरचनाकार "विद्रोह का लक्ष्य साधे बैठे थे किन्तु अनजाने ही ये शासक वर्ग का ही स्वार्थ पूरा कर रहे थे राजनीति और साहित्य का अलगाव, बुद्धिजीवियों की राजनीति से विमुखता शासक वर्ग के हित में था । इसका अहसास भी इन्हें हो गया था पर कुछ देर से हुआ ।

---

1· आवेश -1
2· संपादकीय {बूमेरैंग} "आवेश" {1968} रमेश बक्षी
3· कैलाश वाजपेयी

"दरअसल हम बहुत बड़े ढोंगी थे
अपने जमाने के
नफरत भी करते थे सत्ता से/ और कामना थे,
पूंछ भी हिलाने के - ।1

२. अगदेहवाद सेक्स को मूल बिंदुबनाकर विभिन्न कोण खींचने का प्रयास इन सभी रचनाकारों में दिखाता हैं । "सेक्स" और इससे सम्बद्ध सभी शब्द इनकी शब्दावली का निर्माण करते हैं । पत्रिका के संपादकीय समर्पण से लेकर उसकी रचनाएं सभी इसी शाबदावली- इसी भाव" से भरी हुई मिलती हैं । दृष्टव्य हैं, श्मशानी पीढ़ी की पत्रिका" विभाक्ति" के ऐसे ही दो समर्पण, जो अज्ञेय के साहित्य प्रकाशांतर से प्रयोगवादी मूल्यों के प्रति इनका स्वीकृति भाव और लगाव भी प्रदर्शित करते हैं -

"शेखर एक जीवनी के "शेखर" को जिसे अपने माँ-बाप का रतिरत होना अच्छा लगता हैं । " 2

"नदी के द्वीप" की "रेखा को जो "भुवन" नामक एक अपरिचित युवक के साथ सोती हैं और बच्चा गिराती हैं । " 3

व्यावसायिक पत्रिकाओं ने इनआंदोलनों को इसी कारण स्थान दिया । क्योंकि इस साहित्य में सेक्स - चित्रण और शब्दावली की जो भरमार है, वह बिक्री की दृष्टि से बहुत लाभप्रद है । बंगाल की "भूखी पीढ़ी" को सबसे पहले "धर्मयुग" पत्रिका में प्रचार किया गया था ।

3. <u>नगरीय जीवन से ऊब</u>

अधिकांश रचनाकार शहर में रहने वाले मध्यमवर्ग के थे, शहरी जीवन की यांत्रिकता में संत्रास, ऊब, घुटन, जो उन्हें मिला उससे भी ये विक्षुब्ध थे, शहर का हर व्यक्ति अपरिचित होने का भाव लिए हुए एकाकी जीवन व्यतीत करता है उसी में छटपटा रहता हैं ।

---

1. कैलाश वाजपेयी
2. विभाक्ति {श्मशानी पीढ़ी की पत्रिका} अंक5, कलकत्ता
3. विभाक्ति- 4.

"हममें में से अधिकांश कवि महानगरों या नगरों में रह रहे हैं । नगरों का जीवन यांत्रिका हो गया है । व्यस्तता में जीन एक अजीब सी उमस और अजनबीयत तथा अकेलेपन की भावना हममें घर करती जा रही है । आज हमारा सारा जीवन विषम परिस्थितियों से गुजर रहा है । एक ओर सामाजिक संसार, पत्नी परिवार, प्रेयसी और दूसरी ओर यार-दोस्त नाचघर, शराब खानें, रेस्तरां आदि हमारे जीवन के अनिवार्य अंग बन गए है, जिनमें आपस में कोई समानता नहीं हैं ।§1§ परन्तु शहरी जीवन की अपसंस्कृति का भागीदार सबसे अधिक यही विरोध करने वाले बने । सब कुछ गलत है पर जो भी है इसी में जीना है यथास्थिति विरोध करने वाले बने । सब कुछ गलत है पर जो भी है इसी में जीने को बरकरार रखने की इच्छा इनमें दिखती है, परिवर्तन के लिए कोई प्रयास नहीं होता -

रो रोकर, चिल्लाने, परेशान होने और
हाथ हिलाने के अलावा
मेरा आवेश कोई भी विद्रोह नहीं पैदा कर पाता
कोई परिवर्तन नहीं हो पाता
सिवा ठंडा पड़े रहने के §2§

4· <u>विरोध-हर स्तर पर</u>

अपने मध्यवर्गीय जीवन की अतृप्त इच्छाओं-आकांक्षाओं के साथ नैतिक मूल्यों का भार ढोते हुए शहरी जीवन जीना इन्हें त्रासदपूर्ण प्रतीत हो रहा था §3§ इसीकारण तो वे कभी मृत्यु /आत्महत्या का विचार करते या फिर सब कुछ छोड़ देने, सब का विरोध करने की मुद्रा धारण कर लेते ।

"ड्रापआउट" यानि जिन्हें व्यवस्था ने अस्वीकार कर दिया, अपनी स्थिति सुधारने और पहचान बनाने के अवसर नहीं दिए ऐसे मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की उस व्यवस्था के प्रति और क्या प्रतिक्रिया हो सकती है सिवाय इसके कि वह इस दुनिया के समानांतर नई दुनिया की रचना की ओर प्रवृत्त हो । इस "समानांतर जगत्" के

---

§1§ जगदीश चतुर्वेदी, प्रारंभ
§2§ "कोई परिवर्तन नहीं होता, नीलमसिंह, आवेश । पृ·
§3§ "युग बोध का बुरदा और नैतिकता का इरादा लेकर····
इस व्यवस्था में शामिल होने या न होने से,
इस देश की मृत्युदर और जन्मदर का दर्रा -
कोई फर्क नहीं पड़ेगा"
अनैतिक, लीलाधर जगूड़ी, आवेश 2·

लिए उसने वास्तविक समाज की सभी परंपरा और सभी प्रकार के सामाजिक संबंधों मुल्यों का विरोध किया । नैतिक मूल्य एक बंधन थे इसलिए इसके बदले इनमें-यौन व्याभिचार की इच्छा पनपती है "देह की राजनीति"और "कमर से नीचे की क्रांति" में इनका साहित्य लिप्त रहता है । परिवार-जन मां-बाप,भाई-बहन,पत्नी इनमें किसी प्रकार का लगावा उत्पन्न करने में असफल रहते हैं, महज औपचारिकता बन जाते है- "जरूरी नहीं है मां-बाप का होना, भाई-बहन का रोना या पत्नी के साथ सोना ‖1‖ ये भाग कविता में मिलना आश्चर्य जनक नहीं था ।

परंपरा से विरोध है इसलिए"अपरंपरा" का निर्माण होता है । पूर्ववर्ती साहित्स से "ऋणमुक्त" हो उसके प्रति अपना कर्तव्य निर्वाहकर उस परंपरा से अपना नाता तो ये तोड ही चुके थे । "अतीत को बेदर्दी के साथ काट" चुके थे ।

किसी भी प्रचलित मूल्य के साथ"अ" और जोड़कर अपना विरोध प्रकट कर लेते थे । विरोध की तीव्रता कभी कभी इतनी हो जाती कि कवित अपनी ही कविता का विरोध करने लगता-

मगर खबरदार,मुझे कविव मत कहो
मैं बकता नहीं हूं कविताए
ईजाद करता हूं
गाली
फिर उसे बुदबुदाता हूं ‖मायाँ दर्पण‖

इस विरोध का एक महत्त्वपूर्ण पहले भी था जिसपर इस दौर की सभी पत्रिकाओं में एक जुट संघर्ष किया,वह था-"व्यवस्था विरोध"। यद्यपि राजनीति से, किसी प्रकार की विचारधारा से अपनी अप्रतिबद्धता ये सभी रचनाकार घोषित कर चुके थ किन्तु फिर भी वर्तमान राजनीति के एक स्तर-व्यवासायिकता की प्रवृत्ति" का संगठित विरोध किया । इसका कारण ये भी हो सकता है कि "मुक्त चिंतन" के हर स्तर को उस समय की"स्थापित पत्रिकाओं" में स्थान नहीं मिला या फिर "ड्राप आउट" होने के कारण "व्यवस्था" के हर पहलू का जोरदार विरोध किया गया । कारण ये दोनों ही हो सकते है परन्तु इन आंदोलनों को एक आक्रामक रूप इनके "व्यावसायिकता-लेखन और पत्रकारिता,दोनों ही में,विरोध ने दिया । "व्यावसायिकता के प्रति जो"उग्रता"इनकी पत्रिकाओं में देखने को मिलती है,उसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि - कोई पत्रिका" व्यावसायिक लेखकों के लिए कोई स्थान नहीं ‖2‖ का रवैया अख्तियार करती है तो कहीं"लघु पत्रिकाओं के लिए एक प्रोग्राम की पहल ‖3‖ होती है जिसमें सी लेखकों से अपील की जाती है कि वे बडी पत्रिकाओं में न लिखे" यही नहीं

---

1• "अपने आदमी होने की अस्वीकृति में"विनय दूबे,आवेश -2

2• सनीचर" मई"69

3• आवेश-1

बल्कि अपने पाठकों से वे ये भी आग्रह करती है कि वे इन व्यावसायिक पत्रिका को खरीदें भी नहीं-"लघु पत्रिका खरीद कर पढेंऔर व्यावसायिक पत्रिका मांग कर ।1।

"छोटी अथवा लघु पत्रिका की अवधारणा तथा "लघु पत्रिका और व्यावसायिक पत्रिका का द्वन्द्व" इन्हीं आंदोलनों के तहत अस्तित्व में आया । व्यावसायिक लेखन की पहचान प्रचारतंत्र के माध्यम से पूंजीवादी संस्कृति के प्रचार-प्रसार की नीतियों का पर्दाफाश लघु पत्रिका की पहचान,उसका अस्तित्व संकट व संघर्ष आदि अनेकों महत्वपूर्ण वैचारिक मुद्दे इस दौर में उभरकर आए । अपनी पीढी के "युवा लेखन के उद्देश्य एवम् प्रकृति की व्याख्या भी की । "व्यवस्था के खिलाफ लडाई में नयी छोटी पत्रिकाओं की आवश्यकता का अनुभव "हिन्दी लेखक कर रहे हैं । छोटी पत्रिकाओं का उद्देश्य व्यावसायिक पत्रों के आगे का क्लात्मक कदम नहीं है । वह उद्देश्य "कृति" से "कल्पना" तक का रहा है । अब तो पूंजीवादी व्यवस्था के मुखपत्र व्यावसायिक पत्रों के "विशाल सर्कल" कोनष्ट करना ही उसका एक मात्र उद्देश्य है " व्यावसायिक पत्रों के नीचे" "डाइनामाइट" लगाना ही फिलहाल छोटी पत्रिकाओं का एक मात्र प्रोग्राम हो सकता है ।2।

आंदोलन में उग्रता होने के बावजूद "संगठन" और किसी प्रकार की "विचारधारा "से प्रतिबद्धता के अभाव में ये "व्यक्तिगत स्तर" पर विरोध बनकर रह गया ।3। यद्यपि "एक जुट हो, सांगठनिक स्तर पर विरोध करने के कुछ प्रयास भी किए गए किन्तु व्यापक समर्थन के अभाव में वह सफल न हो सका । यथास्थिति बदल पाने की कोई राह और चाह न होने के कारण ये आंदोलन बिखर गए और व्यवस्था "ज्यों की त्यों" बनी रही"सब कुछ वैसा का वैसा रह गया ।

अपनी मूल्यहीनता और विचारहीनता के कारण वर्ग दुश्मन की पहचान और विकल्प की तलाश" के स्थान पर ये साहित्यिक आंदोलन अपने अपने से ही लडकर समाप्त हो गए ।

---

1.

2. छोटी पत्रिकाओं के लिए एक प्रोग्राम एक जरूरी पहल,धर्मेन्द्र गुप्त,आवेश ।

3. "नयी कविता"नयी कहानी" आंदोलन के अवसान काल में हर छोटी पत्रिका नए साहित्यिक आंदोलन का उद्घोष करती हुई बहुत ही अल्प अवधि के लिए रचना के केन्द्र में प्रतिष्ठित होने का प्रयत्न करती रही।" लघु पत्रिका आंदोलन का विकास मुरली मनोहर "प्रसादसिंह,जनवादी साहित्य के दस वर्ष, पृ.20

हम अंधेरेको नहीं पहचानते
और लडते रहते हैं
निरंतर अपने अधिकारी से
कहीं कुछ नहीं होता
वैसा का वैसा रह जाता है
सब कुछ । " ‖1‖

बल्कि अपने अंतिम चरण में इनमें "आंदोलनों को हवाई देने का प्रयास"और साहित्य व पत्रिकारिता" को माजाक बना देने तक की अराजकता देखने को मिलती है । "कलकत्ता में चौरंगी बाजार में एकऔरत की पीठ पर कविता लिखकर उसे एक प्रकार की लघु-पत्रिका घोषित करना"या हर घंटे पर कविताएं लिखकर और छापकर अपनी रचनात्मक उर्वरता का प्रमाण देना "कविता घंटकों"ऐसे ही कुछ उदाहरण है । जिन्होंने लघु पत्रिका के गंभीर उत्तरदायित्व का स्तर गिराकर उसे"हास्यास्पद" रूप दे दिया । और उन अप्रत्यक्ष रूप से व्यावसायिक पत्रकारों -लेखकों को लघु पत्रिका की "चुनौती" का आरे से निश्चित कर दिया ।

इस दशक के विभिन्न आंदोलन की उपलब्धियों की यदि जांच की जाए तो दो ही ऐसी विशेषताएं इनमें मिल सकती है जो कुछ सीमा तक उपलब्धि मानी जा सकती है । प्रथम-लघु पत्रिका को"आंदोलनात्मक "स्वरूप प्रदान करना तथा दूसरा-भाषा । भाषा एवं शैली के स्तर पर इन्होंने "नयी कविता के आभिजा" को तोडा जिससे इससे पहले केवल मुक्तिबोध ही संघर्ष करते रहे थे । कविता की हौलों, भाषा को अधिक सरल बनाकर इसे ग्राह्य बनाया । भाषा को कविता के अनुकूल बनाया, यद्यपि इसका भी दुरूपयोग ही किया । किन्तु फिर भी कविता की सपाटबयानी ने भावी कविता के लिए मार्ग प्रशस्त किया । "व्याकरण सूंघकर मरी भाषा के गूंगे संकेत ‖ 2‖ इनके विद्रोह को व्यक्त करने के लिए अपर्याप्त थे अत: "नवलेखन ने शिल्प और भाषा संबंधी जो करवट ली, वह इस व्याकरण` से मुक्ति की ही चेष्टा थी । ‖ 3‖ अत: लय युक्त शब्द संघात को पीछे छोड "निषेधों की वर्णमाला से नई ध्वनियां रची गई ।

श्मशानी पीढी से अकविता तक सभी आंदोलनों में कुछके मात्रा में "सिनिसिज्म ‖सनकीपन‖ दिखाई पडता है । अराजकतापूर्ण मूल्यों को लेकर इनमें अन्यायपूर्ण सामाजिक स्थितियों और पाखंडपूर्ण जीवन दशाओं से व्यक्तिगत तौर पर निबटने की बेचैनी मिलती हैं ।

---

1• गंगाप्रसाद विमल, स्मारम्बरा, अगस्त " 66
2• जगदीश चतुर्वेदी
3• मुद्राराक्षस पहल 7 ‖ मई 76‖ पृष्ट 17•

"कहीं इसका रूप निषेधवादी अराजकता का है, कहीं आत्मपीडा का, कहीं पाशविक भोग एवं हिंस्र भाव का है, कहीं अहं के विस्फोट का, कहीं युयुत्सा का और कहीं क्रांति भावना का । ‖ 1 ‖

विचारधारा के स्तर पर इनके आंदोलन अंतर्राष्ट्रीय ‖नव वामपंथ" को ही स्वर देते दिखाते हैं ।

<u>"बशर्ते तय करो किस ओर हो तुम" ‖ 2 ‖</u>

एक ओर नयी कविता से प्रत्यक्षतः जुडी पत्रिकायें एवं साहित्य, दूसरी सरण रोमांटिक अकवितावादी साहित्य व पत्रिका इनसे लड़ने के लिए एक "जवाबी गदर" की तैयारी भी इसी दशक में हुई, जो नयी कविता के "अभिजात" और अकविता की " अराजकता" के जवाब में आया । "साहित्य" की उपयोगिता, समाज से उसके संबंध, राजनीति और साहित्य का अन्त संबंध, तथा साहित्य व साहित्यकार की प्रतिबद्धता आदि अनेक बैचारिक मुद्दों पर वादविवाद आरंभ हुआ । जनवादी मूल्यों की रक्षा करने के लिए " जनवादी साहित्य आंदोलन पुनः सशक्त हुआ ।

स्वतंत्र व्यक्ति वाद के छल के प्रति चेतावनी दी गई 3 तथा पिछले आंदोलनों की आलोचनात्मक व्याख्या हुई साहित्य और पत्रिका दोनों के माध्यम से ।

कविता में कहने की आदत नहीं,पर कह दूं
वर्तमान समाज में चल नहीं सकता
पूंजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता
स्वातंत्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को
जन को । ‖ 3 ‖

पत्रिका व साहित्य में "जनवाद" की ये लहर 1966-67 के राजनीतिक जनवादी आंदोलनों का प्रतिफलन है । 1967 में ‖ कांग्रेस के कई राज्यों में "सताच्युत" होने तथा वामपंथी प्रभाव के बढ़ने के फलस्वरूप बुद्धिजीवियों की रचनात्मकऊर्जा में ये "जनवादी ताकतें भी एकजुट होने लगीं ।

1• राजकुमार वर्मा, जनवादी साहित्य के दस वर्ष, 2•85
समूचे यथार्थ की सही समझ के अभाव में ये आंदोलन विफल हुए, अन्यथा रचनात्मक संभावनाएं उसमें कम नहीं थी- रामकुमार कृषक
और प्रतिदंध कविताएं ‖ विशेष अंक‖, कविता की वापसी, बनाम वापसी की कविता
2• मुक्ति बोध

संगठित रूप से साहित्य की पतनशील-अराजकता वादी मन:स्थिति का विरोध हुआ । साहित्य में राजनीति की घुसपैठ अनिवार्य शर्त हो गई "लेखक के लिए प्रतिबद्धता और पुखरदृष्टि दिशा-मार्क्सवाद की हिमायत हुई ।[1]।

जहां से अब तो जितने रोज
अपनाजीना होता है
तुम्हारी चोटें होनी है
हमारा सीना होना है [शमशेर]

घोषणा करते हुए, व्यवस्था तथा उसके अत्याचारों, दमन का सामना करने के लिए बहुत सी "वामपंथी-जनवादी" पत्रिकाएं प्रकाशित हुई । जिनमें उन्मेष कृति, बाम, कथा आरंभ, सामायिक, वातायन, सनीचर, विचार, बातचीत, उत्तरार्द्ध जैसी अनेक महत्वपूर्ण पत्रिकाएं आरंभ हुई । जिनमें चिन्तन के मुख्य मुद्दे साहित्य की प्रतिबद्धता साहित्यकार का सामाजिक दायित्व" रहा । साहित्य में जनवादी स्वर हटने के साथ, ही साथ पिछले आंदोलनों को हवा देता हुआ सरकारी तंत्र जाग उठा और इन स्वरों का दमन करने की ओर सक्रिय हुआ। "आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था कानून" हिंसक गतिविधि निरोधक कानून" निरोधक नजरबंदी कानून" जैसे दमनकारी कानूनों ने देश के बंगाल, आंध्र, पंजाब, केरल बिहार जैसे राज्यों में आतंक और दमन का बोलबाला कायम किया ।

जहां भी जनवादी आंदोलन और क्रांतिकारी संघर्ष विकसित हुए वही पुलिस सेना की टुकड़ियां पहुचाई गई । राजनीतिक गतिविधियों को रोकने के लिए साम्राज्यवादी पूंजीवादी देशों के तरीकों को अपनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई । विश्व के अन्य देशों के समान यहां भी राजनीतिक बंदियों की संख्या में बढ़ोतरी हुई । [2]

एक ओर तो ये सरकार दमन नीति थी, दूसरा मोर्चा संभाला गया व्यावसायिक पत्रिका अथवा विभिन्न सरकारी प्रतिष्ठानों से जुड़े साहित्यकारों द्वारा

---

1. "जो लोग साहित्यकला को शीशे में बद खूबसूरत परी के रूप में देखना चाहते हैं वे लोग-चक्षुदर्शन सुख से कदाचित उस पलायन को ही बरकरार रखना चाहते हैं जो आज की भ्रष्ट राजनीति की संडाध के नीचे घिसते जीवन की घिनौनी तस्वीर प्रस्तुत करता है । यदि लेखक किसी दर्शन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता नहीं रखता तो उसका साहित्य दृष्टिहीन होगा । फिर आम आम आदमी के लिए जो लेख लड़ाई लड़ रहे हैं उन्हें तो एक सुलझी हुई प्रखर दृष्टि दिशा रखनी है, वह है-मार्क्सवादी"
"संपादकीय" कालबोध

2. एमनेस्टी इंटरनेशनल की रिपोर्ट 1971 के अनुसार "विश्व की जेलों में पांच लाख के करीब व्यक्ति अपने सिद्धांतों के लिए कैदी बनाए गए । विशेषकर -लातिन अमरीका, दक्षिण वियतनाम, इंडोनेशिया, अफ्रीका, अंगोला, श्रीलंका और भारत में हजारों राजनैतिक कैदी हैं ।

जिनका "लघु पत्रिका" विरोध का संगठित आक्रमण लगातार जारी रहा । धर्मयुग,सारिका,कादंबिनी या इसी तरह की व्यावसायिक-सरकारी अथवा प्रतिष्ठानी पत्रिकाओं के माध्यम से (कमलेश्वर,धर्मवीर भारती जैसे)साहित्यकार अपना विरोध प्रकट कर रहे थे । इसी अभिप्राय के लेख सारिका में प्रकाशित हुए-"चिकनी सतह: बहते आंदोलन,अराजनीति की राजनीति (1) दो लेख क्रमश: मार्च तथा मई 1967 के अंक में छपे । "शताब्दी"69,के अंक में कमलेश्वर ने लघु पत्रिका के विरोध में ये शब्द लिखे- (छोटी पत्रिकाएं) जंगल में शोर की तरह नहीं घूमती,भेड़ों के विरोह की तरह घूम रही है । लगभग एक स्वर में बोल रही हैं और एक स्वर है व्यर्थता का ।"

यद्यपि इनका विरोध उसी"निषेधवादी प्रवृत्ति के साहित्य से होता(जिसके स्वंय ये किसी समय हिमायती रहे तथा) जो सन् "66 से पूर्ण बहुत अधिक संख्या में,साहित्य व पत्रिकाओं में मिलती है अपने वक्तव्य को प्रमाणित करने के लिए वे साहित्य से ऐसे ही उदाहरण दिया करते किन्तु लघु पत्रिका आंदोलन की जनवादी पत्रिका व साहित्य को कोई महत्व न दिया । जिससे इनके विरोध का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है कि "निषेधवादी"पत्रिकाओं के बहाने पूरे लघु पत्रिका आंदोलन को खारिज करने की साजिश -के ही साझेदार थे ।

जनवादी साहित्य तथा पत्रिकाएं सन्"66 के बाद से काफी मात्रा में प्रकाशित हुई किन्तु उनका "आन्दोलनकारी रूप" आठवें दशक में ही उग्र रूप में पा सका । सातवें दशक का यह अंतिम चरण जनवादी-साहित्य का "संधि युग था । जब"अकविता -वादी"साहित्य प्रवृत्तियां पूर्णत: क्षीण नहीं हुई थी और साहित्य के "जनवादी करण" की प्रक्रिया आंरभ हो रही थी । "इस बीच ऐसा साहित्य लिखा जा रहा था जो अकविता के अंशों के साथ जनवादी चेतना को उग्र दृष्टि से अंकित कर रहा था । ~~सर्वनिषेधवाद और विकल्पहीन विद्रोह की~~ स्थिति से मानसिकता गुजर चुकी थी और अब विकल्प के लिए चिंता सुगबुगाने लगी थी ।" (2)

---

1.सारिका मार्च,मई 1967,लेख ध र्मवीर भारती

2. "इस स्थिति की तैयारी दरअसल 1968 से"72 तक हुई । इसलिए यह अवधि "संक्रमण काल" की अवधि है । सत्तरोत्तरी वाम जनवादे प्रतिबद्ध कविता चूंकि अकविता की निषेधवादी प्रवृत्ति से उबरकर जन्मी थी,अत:उसमें से शुरू में उग्रवादी कवियों पर हिन्दी के पाठकों का विशेष ध्यान गया । इनमें वेणु गोपाल,आलोक धन्वा की विशेष चर्चा हुई । धूमिल,लीलाधर जगूड़ी में वाम और जनवादी तत्व थे किन्तु मानसिकता में सर्वनिषेधवाद ही था । विकल्प का इशारा इनकी रचनाओं में में भी नहीं था । इसीलिए उन्हें अकविता और प्रतिबद्ध कविता की "देहरी द्वार" का कवि माना जा सकता है क्योंकि उनमें दोनों प्रवृत्तियों के अंश थे ।" -जनवादी साहित्य,चंचल चौहान पृ."86

जिस प्रकार साहित्य में तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ दिखाई पड रही थी।उसी प्रकार पत्रिकाओं में भी यह अंतर मिलता है । कुछ अकवितावादी थी कुछ जनवादी तथा कुछ "मध्यम"मार्गी एक ओर (सन् 69 से)"आवेश" का प्रकाशन हो रहा था जिसमें अकवितावादी साहित्य को मंच प्रदान किया गया । दूसरी ओर वामपंथी पत्रिकाएं-सनीचर उत्तरार्द्ध,कृति,वाम,तो तीसरी तरफ"विचार"बातचीत ऐसी जनवादी पत्रिकाएं थी जिनकी भावभूमि अकविता था इनमें अकवितावादी "भाषा" का प्रयोग हुआ ।

जनवादी साहित्य एवं पत्रिकाएं आठवें दशक में सुव्यवस्थित रूप से विकसित हुआ(अत: इस युग कीजनवादी पत्रिकाओं का अध्ययन भी उन्हीं पत्रिकाओं के साथ किया जाएगा,ऐसा महज सुविधा के लिए किया जा रहा है ।( इस दौर की सभी प्रकार की पत्रिकाओं में जिस स्तर पर सम्मति है वह है व्यवस्था विरोध" तथा "व्यावसायिक पत्रिकाओं को पढने से स्पष्ट हो जाता है।"अकवितावादियों" ने न केवल राजनीतिक व्यवस्था का विरोध किया बल्कि उनका विरोध बढकर एक "फैशन" बन गया जिसमें किसी भी प्रकार की सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था मूल्य,विचार-धारा विरोध में बदल गया । एक ओर वे"साहित्य या पत्रिकाओं में किसी भी प्रकार का "प्रतिबद्धता"काविरोध करते तो दूसरी तरफ उन लेखकों की भी आलोचना करते है जोकि साहित्य से राजनीति के बिलगाव की बात करते हैं । (1( इनके अंतर्विरोधों का विश्लेषण किया (2( उस समय की "जनवादी पत्रिकाए विचारधारात्मक स्तर पर

---

1."पिछले एक दो बरस में कोई एक दर्जन पत्रिकाएं ऐसी सामने आई हैं, जो वामपंथी कही जाती हैं । ऐसे विभाजन से मेरा सख्त विरोध है इसलिए कि पत्रिका साहित्यिक असाहित्यिक बेशक हो सकती है,वामपंथी दक्षिणपंथी नहीं हो सकती,न साहित्य को घसीटकर उस पर राजनीति का रंग ही पोत सकती है ।राजनीति जब भी मुक्त चिंतन पर हावी होती है वह उसके "मुक्त होने को संकुचित करती चलती है इसी को विलोक स्थिति है राजनीति से साहित्य को अलग करने की । युवा पीढी में ऐसे कई लेखक है है जो सायास यह कोशिश करते हैं कि किसी भी तरह उनका संबंध राजनीति से न जुड जाये । इस दिशा में वे लेखक अधिक आते है जिनका सरकार से कोई न कोई निहित स्वार्थ है" संपादकीय आवेश-2 पृ.8-9

2. "इन लेखकों से यदि पछा जाए कि उनका विरोध किस व्यवस्था से है तो वे किसी खास व्यवस्था का नामन बताकर व्यवस्था मात्र को अपना विरोधी बतलाएंगे ।उनसे यदि पूछा जाए कि उनका विरोध कैसा या किस रूप में है तो वे अपने विरोध को न नाम देने से इंकार करके कहेंगे-पूरा विरोध । विरोध की नकली मुद्रा का यह लेखन जहां एकओर युवा लेखन के तेवर को भोथरा करता है,वहां दूसरी ओर उसके बारे में भ्रमात्मक तस्वीर भी बनाता है वह संपूर्ण युवा लेखन को झूठा और जिम्मेदार,अराजक बनाने की कोशिश करता है "-युवा लेखन और व्यवस्था विरोध,जगमुंदिर तायल, आवेश-7।,पृ.45

विचारधारात्मक स्तर पर प्रतिबद्ध रही तथा "राजनीति" से लेखक तथा साहित्य के अनिवार्य संबंध की इनमें जोर-शोर से वकालत की गई जब राजनीति हमारे अस्तित्व से लेकर पारिवारिक जीवन,अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक विकास, मानवीय मूल्यों और स्वतंत्र अभिव्यक्ति तक सभी को निर्णायक रूप से प्रभावित करता है । ऐसी स्थिति में यदि साहित्य मानव जीवन और समाज का प्रतिनिधित्व करता है तो उसका राजनीति के अलगाव होना संभव नहीं है । [1] रा राजनीति का रिश्ता एक प्रासंगिक सवाल [2] बन गया । इस दौर के जनवादी साहित्य में व्यापक रूप से राजनीति का प्रभाव देखा जा सकता है । धूमिल शमशेर जगूड़ी,जैसे अनेक कवियों की कविताओं में राजनीति का स्वर प्रधान था । मुक्तिबोध के साहित्यिक सौष्ठव का यह चरम विकास काल थी । इस दशक के अंत में रघुवीर सहाय,सर्वेश्वर जैसे कवियों के साहित्य का बीजारोपण हुआ । यथार्थोन्मुख कथा साहित्य के रचनाधर्मी दूधनाथ सिंह,डा० माहेश्वर जैसे कहानीकार रहे । यद्यपि 66 के बाद में के यथार्थोन्मुख साहित्य का मुख्य उद्देश्य सेक्स-टेबू के विरुद्ध लड़ाई छेड़ना था समाज के व्यापक परिप्रेक्ष्य की ओर रचनाकार की दृष्टि अधिक न थी इसीकारण इस साहित्य में परिपक्व दृष्टि का अभाव मिलता है। वस्तुत: इस जनवादी-यथार्थोन्मुख साहित्य का विकास आगामी दशक में देखा जा सकता है ।

---

1. "राजनीति आज कविता में परिवेश से कुछ अधिक व्यापक चेतना बनकर उपस्थित हो रही है ।"डा॰नित्यानंदतिवारी,कल्पना,फरवरी 1968

2. जुलाई-सितंबर"68 आलोचना ।

'तृतीय अध्याय'

लघु पत्रिका आंदोलन सन् 70 से 80 तक-

पिछले दशक में लघु पत्रिकाओं में जिन तीन प्रकार की प्रवृत्तियों नयी कविता वादी, अकवितावादी, यथार्थोन्मुख- का विकास हुआ, उनमें से केवल यथार्थोन्मुख अर्थात् जनवादी पत्रिकाएं ही इस दशक तक जीवित रह सकीं। साहित्य में भी नयी कविता के बाद अकविता वादी आंदोलन भी अब तक ठंडे हो गए थे। नई जनवादी चेतना विशेषकर सर्वहारा-वर्ग की राजनीति से व्यापक स्तर पर भारतीय बुद्धिजीवी प्रभावित हुए यहां तक कि अकवितावादी आंदोलनों से जुडे अनेक कवियों में भी यह क्रांतिकारी परिवर्तन लक्ष्य किया जा सकता है।

दूर सुनाई दे रहा है संगीत
चला आ रहा है एक लंबा जुलूस
कोई गा रहा है तन्मय होकर
शायद फिर लौट आया है वही सवेर का संगीत
जिसे सुनने को तरसता रहा हूँ
पिछले वर्षों से
दिन-रात पिछले पहर आधी रात"।1।

"दिशाबोध" के प्रवेशांक में प्रकाशित जगदीश गुप्त की यह कविता उस सवेरे का संकेत करती है जिसमें "स्त्री की योनि" का अधकार नहीं वरन् वैज्ञानिक तर्क संगत वर्ग चेतना के प्रकाश का विस्तार है। युवा लेखन ने पहली बार अपने लिए किसी निजी संसार की रचना से आगे बढ़कर समसामयिक युगीन संसार को अपने निजी संसार के रूप में स्वीकार किया पिछले दशक का युवा लेखन। कुछ अपवादों को छोड़कर। या तो ~~संदर्भहीन~~ निजी संसार रहा या निजता के ताप से रहित समसामयिक विवरण मात्र।2। धूमिल व लीलाधर जगूडी जैसे जनवादी कवि भी इस से अलग न थे यद्यपि उनकी कविता में जनवादी तत्व भी रहे किंतु मानसिकता में सर्वनिषेधवाद ही रहा। इसीलिए उन्हें अकविता और प्रतिबद्ध कविता की "देहरी द्वार" का कवित माना जा रहा है।3।

इस संधि/संक्रमण काल से जनवाद का विकास जिन परिस्थितियों में हुआ उसमें इस दशक की राजनीति निर्णायक भूमिका अदा करती है। राजनीतिक दृष्टि से यह दशक न केवल महत्वपूर्ण रहा बल्कि अविस्मरणीय भी कहा जा सकता है। विशेषकर इस दशक का उत्तरार्द्ध, जो स्वतंत्र भारत के 28 वर्षीय इतिहास में एक दलीय शासन की तानाशाही का चरम विकास बिंदु है। राजनीतिक उथल-पुथल तथा उसका साहित्य व पत्रकारितापर प्रभाव देखने के लिए इस दशक को पूर्वार्द्ध ।70-75।तथा उत्तरार्द्ध।75-80। दो कालखंडों में विभक्त किया जा सकता है।

---

1. जून"78 प्रवेशांक-दिशाबोध,
2. युवा लेखन और व्यवस्था विरोध-जगमुंदिर तायल, ओर"77पृ.45
3. चंचल चौहान, जनवादी समीक्षा पृ.166

यदि इस दौर की राजनीतिक उथल-पुथल तथा उन परिस्थितियों का जायजा लिया जाए, जिसने समय-समय पर जनसंघर्षों को जन्म दिया तथा बुद्धि जीवियों को प्रभावित किया तो संक्षेप में इसका ब्यौरा यूं दिया जा सकता है कि- कांग्रेस ने किसी भी प्रकार सत्ता पुन: प्राप्त करने के लिए सन् "71 के चुनावों में भारमी मात्रा में वोट की हेरा-फेरी कर विभिन्न राज्यों यहां तक की पश्चिम बंगाल पर भी शासन पा लिया । कांग्रेस का चुनावी नारा था-गरीबी हटाओ । अर्थशास्त्रियों का अध्ययन यह रिपोर्ट देता है कि 73-74 की मुद्रा स्फीति के कारण सन् 72 से 75 तक कीमतों में 50% से 100% बढोतरी हुई ‖1‖ और इन पाचं वर्षों में आर्थिक बजट में "रक्षा-खर्च" दोगुना बढा । ‖2‖ महंगाई, गिरता हुआ जीवन स्तर, बेरोजगारी, आर्थिक असंतोष से जन आक्रोश भडका, जनसाधारण ही नही रक्षा सेनाओं ने भी विद्रोह किया-सन् 72 में भारतीय नौसेना, तथा उत्तर प्रदेश राज्य पुलिस के विद्रोह हुए । आंतरिक सुरक्षा कायम रखने के लिए भारत सरकार ने 1971 में जिस "मीसा" नामक अधिनियम का निर्माण किया उसके अंतगर्त 1972 में केवल पश्चिम बंगाल में ही 32,000 लोग गिरफ्तार किए गए । 74 में रेलवे की आम हडताल हुई जिसमें 2 हजार लोग गिरफ्तार हुए और 25 हजार कर्मचारी पदच्युत किए गए । इन व्यापक विरोधों से बचने के लिए "71 का मीसा अपर्याप्त सिद्ध हुआ तो "75 में उसमें पुन संशोधन हुआ । किन्तु सुरक्षा के उपाय ज्यों-ज्यों कठोर बनते गए, विद्रोह उतना ही व्यापक होता गया सन् 75 में जिस स्तर पर देशभर में विरोध हुआ वह आजादी के बाद पहली बार इतना प्रखर था - दिल्ली में अध्यापकों के एक बड़े प्रर्दशन में 600 अध्यापक कैद किए गए, मद्रास में जुलाई माह में 100,000 लोगों की विशाल रैली हुई, अक्तूबर में 400,000 औद्योगिक मजदूरों ने आम औद्योगिक हडताल में, जो नए आर्थिक कार्यक्रम के विरोध में थी, हिस्सा लिया । जून 75 से फरवरी 76 के बीच केवल मध्यप्रदेश में, मीसा व डी आई आर के अंतर्गत, 13 हजार नागरिक बंदी बनाए गए । सन् 75 के इनव्यापक विरोधों का प्रेरण स्त्रोत व पृष्ठभूमि में थी- 26 जून 1975 को आपात कालीन स्थिति की घोषण " । भारतीय संविधान की धारा ‖ 1‖ अनुच्छेद 352 की सहायता से कांग्रेस ने अपनी सरकार सुरक्षित करने के लिए यह अंतिम शास्त्र भी इस्तेमाल कर लिया । यही नहीं आपातकाल की घोषणा के तुरंत बाद 27 जून"75 को विश्व के सबसे बड़े जनतांत्रिक देश में नागरिकों के जनतांत्रिको अधिकारों को बरखास्त कर दिया गया, जब भारतीय संविधान की धारा‖1‖

---

1• ई पी डब्लू, 8•10•76

2• एन आई टू इंडिया पृष्ट 436

3• स्टेट्समैन, 8•1•72

के अनुच्छेद 14, कानून के समक्ष समानता का अधिकार, अनुच्छेद 21, अर्थात् 14 xकानूनxकेxसमक्ष जीवन व स्वतंत्रता का हक तथा अनुच्छेद 21, जिसके अधीन यादृच्छिक गिरफ्तारी व नजरबंदी से बचाव के अधिकार दिए गए थे, इन्हें स्थगित कर दिया गया । संविधान के 38 वें संशोधन में राष्ट्रपति की "आपातकाल" की घोषणा के खिलाफ जांच-पड़ताल को अवैध बना दिया तथा 39वें संशोधन में अदालतों से भी ये अधिकार छी लिए कि वे उच्च पदाधिकारी, जिनमें प्रधानमंत्री भी शामिल हैं संबंधी कोई निर्णय दे सकें । इनसे सबसे बढ़कर था 40 वां संशोधन जिसमें प्रधानमंत्री को किसी भी प्रकार की नागरिक या अपराधिक कार्यवाही से निरापद बना दिया गया, प्रकारांतर से इन सभी संशोधनों के माध्यम से यह ध्वनित किया गया कि शासन कांग्रेस का ही जन्मसिद्ध अधिकार है । जिसे कायम रखने के लिए हिटलरशाही का भी अनुकरण किया जा सकता है । गुजरात का छात्र आंदोलन तथा जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व को बिहार आंदोलन दोनों कुचल दिए गए । बुद्धिजीवियों की कलम पर रोक लगाने के लिए पत्र पत्रिकाओं, प्रेस की स्वतंत्रता समाप्त कर दीक गई, सभी प्रकार की प्रकाशित सामग्री को पहले सेंसर करवाना आवश्यक हो गया- ऐसा कोई भी साहित्य, लेख, चित्र कार्टून संगीत रचनाएं , संपादकीय टिप्पणी, उद्धरण, समाचार शीर्षक आदि जिनके कारण जनसाधारण का सरकार पर से विश्वास समाप्त हो जाए, उन्हें आपत्तिजनक साहित्य मानकर प्रतिबंधित कर दिया गया । अथवा ऐसी किसी सामग्री का प्रकाशन, जिसमें सरकार के प्रति असहमति व असंतुष्टता का भाव हो, यहां तक कि संपादकीय कालम को रिक्त छोड़ना या उसके उद्धरणों द्वारा भर देना भी गैरकानूनी हो गया । " सेंसर द्वारा पारित" पंक्ति छापना अथवा प्रेस के लिए दिए गए निर्देशों को छापने की भी मनाहीं थी । (1)
संक्षेप में हर उस चीज पर प्रतिबंध लगा दिया गया जो सरकार के लिए अहितकर हो सकती है, हर उस व्यक्ति को बंदी बना लिया गया जो सरकार का विरोध कर सकता हो तथा दूसरी ओर जनसाधारण को अपनी इन कार्यवाहियों से अनभिज्ञ रखने के लिए प्रचारतंत्र पर अधिकर व नियंत्रण पा लेना था हर संभव प्रयास दिया गया ।

---

1. एन आई टू इंडिया ४८ - १५८

दमन का ऐसा चक्र चला कि उस जिसके नीचे प्रत्येक जागरूक नागरिक प्रत्येक सजग बुद्धिजीवी तथा हर प्रकार के प्रचार माध्यम दबने लगे ।

आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था कानून, हिंसक गतिविधि, निरोधक नजरबंदी कानून जैसे दमनकारी कानूनों ने देश के बंगाल, केरल, आंध्र, पंजाब, बिहार, गुजरात सभी राज्यों में आतंक और सफेद दमन का बोलबाला कायम कर दिया । एमनेस्टी इंटरनेशनल की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व की जेलों में पांच लाख के करीब व्यक्ति अपने सिद्धांतों के लिए कैदी बनाए गए हैं । विशेषकर अफ्रीका, लातिन अमरीका, दक्षिणी वियतनाम, इंडोनेशिया, श्रीलंका तथा भारत में इस तरह के हजारों कैदी हैं । 14 हजार श्रीलंका में, डेढ लाख इंडोनेशिया में तथा भारत में सिर्फ पश्चिम बंगाल में ही लगभग तीन हजार लोग जेलों में कैद हैं §2§ मानव-अधिकार के अंतर्राष्ट्रीय संघ ने संयुक्त राष्ट्र संघ के महा सचिव के नाम एक पत्र में भारतीय सरकार द्वारा मानव अधिकारों व स्वाधीनता के हनन तथा कैदियों से निर्मम व्यवहार किए जाने के प्रति क्षोभ व्यक्त किया । §2§ आपातकाल के दौरान सरकारी के तानाशाही रवैये के प्रति न केवल भारतीय बल्कि विश्व का प्रत्येक जागरूक नागरिक क्षुब्ध हुआ । अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस काले-शासन का विरोध किया गया । जिससे कांग्रेसी सरकार को हार माननी पडी तथा 27 मार्च, 1977 को, चुनावों के बाद नई सरकार द्वारा "आपातकाल" का अंत किया गया । 1977 के आम चुनावों में उस साल बाद पुन: जनसाधारण ने शासन का अधिकारी कांग्रेस से वापस लेकर अपनी शक्ति और समझदारी का परिचय दिया । यद्यपि नई सरकार भी जनता का नेतृत्व करने में सफल न हो सकी और कुछ ही वर्षों में आपसी मतभेदों के कारण ध्वस्त हो गई, जिससे एक बार फिर साधारण जन सही और सशक्त विकल्प के अभाव में भटकाव की स्थिति में जा पहुंचा ।

राजनीतिक गतिविधियां किस प्रकार बुद्धिजीवियों तथा प्रकारंतर से साहित्य व कला को प्रभावित करते हैं इसका प्रमाण राजनीतिक आंदोलनों के साथ साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करने पर मिल सकता है । जब-जब राजनीतिक

---

§1§ रमेश कुंतल मेघ, प्रारंभ-73 पृ॰ ।।

2॰ एन आई टू इंडिया पृ0 313 सं0रा0सं0 रिपोर्ट, 31॰5॰1976

आंदोलन सक्रिय हुए श्रेष्ठ साहित्य की रचना हुई,जहां राजनीति शून्यता व्याप्त हुई साहित्य में पतनशील-भाग्यवादी, व्यक्तिवादी प्रवृत्तियां हावी हो गई । ईमानदारी,सजग बुद्धिजीवी अपने परिवेश से प्रेरित होता है और इससे प्रभावित होता है साहित्य तथा पत्रकारिता ।

सन् 1970 के बाद लघु पत्रिका के आंदोलन में आने वाले क्रांतिकारी परिवर्तन के पीछे राजनीतिक जन-आंदोलनों की सरगर्मी ही थी, जिसके कारण सामाजिक-राजनीतिक प्रतिबन्ध पत्रिकाएं प्रकाश में आई । "ज्यों-ज्यों " देश का आर्थिक संकट बढा है अन्याय बढा है त्यों-त्यों लेखकों को बेचैनी भी बढी है । अपनी इस बेचैनी को अभिव्यक्ति करने के लिए वे छटपटाएं है, उनकी राजनीतिक दृष्टि भी थोडी खुली है । उनकी इस कशमकश का लाभ राजनैतिक पार्टियों ने विशेषत: वामपंथी पार्टियों ने उठाया है । उन्होनें छोटी साहित्यिक पत्रिकाएं निकालने में मदद की है ।1।

यही नहीं वामपंथी पार्टियों पार्टियों तथा वामपंथी विचारधारा का प्रभाव भी निरंतर बढा है विशेषकर बुद्धिजीवी वर्ग के बीच । समाजवादी रूस और पश्चिम बंगाल की वामपंथी संरकार को सफल शासन बुद्धिजीवियों के समक्ष एक नया विकल्प लेकर आता है । और उनका एक बडा हिस्सा अपनी पिछली उन्मुक्त विचारहीन जिन्दगी का त्याग कर जनवादी विचारधारा को आत्मसात करता है । विभिन्न निशेधवादी आंदोलनों से जुडे साहित्यिक जनवादी साहित्य की ओर प्रवृत्त होते हैं । विचारधारात्मक भटकावों के बावजूद समग्रता में जनवादी साहित्य का आंदोलन उभरता है ।"वाम जनवादी प्रतिबद्ध कविता प्रतिक्रियावादी पतनशील संस्कृति से एंटीथीसिस का संघर्ष कर रही है । मतभेदों के होते हुए भी सभी जनवादी कवि शोषण संस्कृति के खिलाफ है, नये मानवीय समाज की स्थापना का स्वप्न,इस कविता को शक्ति ,सेहत दे रहा है । 2 जगदीश चतुर्वेदी,मुद्राराक्षस, राजीव सक्सेना,गंगाप्रसाद विमल,कुमार विकल,चंद्रकांत देवताले आदि अनेक कवि अपनी

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,दिनमान, 18 अगस्त "74 पृ.9

2. चंचल चौहान, जनवादी समीक्षा, पृ.191

रचनाओं को नया राजनीतिक स्वर देते हैं । हिन्दी कविता से अतर्क,भाववाद मिथ्या चेतना का प्रभाव घटता है और उसकी जगह वैज्ञानिक चिंतन, द्वन्द्वात्मक व ऐतिहासिक भौतिकवाद की समझ एवं वर्गचेतना का विकास होता है । सातवें दशे तक व्यवस्था बदलाव का जो प्रश्न हाशिए पर था अब मुख्य पृष्ठ पर आ गया है । कवियों ने जनता के पक्ष का समर्थन कर वर्तमान राजनीति को प्रभावित किया, कविता सामाजिक हस्तक्षेप की ओर बढ़ी । परिदृश्य पर फिर एक बार जनवादी साहित्य ने अपनी अनिवार्य सार्थकता पुन: सिद्ध कर दी है । जनवादी कविता,सुदीर्घ परंपरा और इतिहास के साथ समृद्धतर होती हुई पुन: पटल पर आ गई तथा अपने होने की अनिवार्य संगति को सिद्ध कर रही है ।

हमने,क्रोध को शक्ल देने की कोशिश की
हम आज भी कर रहे हैं
पर यह कोशिश वही नहीं है जो कल थी
इसलिए हम भी वहीं नहीं है ।
जो कल थे । [2]

व्यवस्था,विरोध का यह नया स्वर है । जो परिवर्तन का संकेत करता है । अभिव्यक्ति की आजादी जो कानूनों के कुचक्र में छिनने लगी थी,पूरे प्रबुद्ध वर्ग में इसे पुन: हासील करने की छटपटाहट थी, जो कविता के माध्यम से व्यक्त हुई, मुक्ति की कामना,शोषण की पीड़ा मुखर हुई । निम्नमध्यमवर्गीय चेतना की छट-पटाहट अभिव्यक्ति के रास्ते सांस्कृतिक विकल्प तलाशने में जुटी । हिन्दी साहित्य में घटना पहली बार [शायद] घटित हुई थीं । जब हजारों युवक प्रेम और रोमांस की कविता ने करके शोषण के खिलाफ कविताएं लिखने पर उतरे हों ।[1][प्रत्येक कविता राजनीतिक ज्ञान व्यक्त करती,वर्तमान व्यवस्था से असहमति प्रकट करती उसे उघाड़ती चलती

---

1•ज्ञानेन्द्र पति, क्यों 6-7

2•चंचल चौहान,जनवादी समीक्षा,पृ•86

कहां है वे लोग
जो संभाषिकाओं में जोश से
बोला किए परसाल
कहां है वे लोग
जो सहयोग झोलों में संभाले
यहां आए थे

सन्"70 में रची त्रिलोचन की यह कविता अपने समय के भ्रष्ट राजनेताओं के झूठे वायदे और अहद देकर जनता में भ्रम उत्पन्न करने की प्रवृत्ति अजागर करती है । यह कविता आज भी सार्थक है, कवि आज भी इसके प्रकार व्यवस्था का मुखौटा उतारने की अपनी जिम्मेदारी पूरा कर रहे है ।

यहां भूमिका जनवादी पत्रिकाएं भी अदकर रही है । प्रबुद्ध जन मानस और युवा लेखकों में जो वामपंथी जनवादी लहर आई वह इन लघु पत्रिकाओं के माध्यम से भी निरंतर विकसित हो रही है । सन् "66 से निषेधवादी आंदोलन को समाप्त कर जो यथार्थोन्मुख प्रवृत्ति साहित्य में विकसित हुई वह इस दशक में जनवादी साहित्य के रूप में आगे बढी । यद्यपि अभी भी अनेक नवोदित लेखक व रचनाकार दक्षिण पंथी व वामपंथ भटकावों के शिकार हैं, मगर फिर भी सांस्कृतिक स्तर पर वे प्रतिक्रियावादी विचारों से लडते हुए बहुत कुछ सकारात्मक भूमिका निभा रहे हैं । राजनैतिक समझ में मतभेदों के बावजूद संभी रचनाकर परस्पर रचनात्मक सहयोग और रचनात्क समीक्षा के आधार पर एक बृहत आंदोलन के हिस्से हैं । यह आंदोलन समाज की विकासनशील शोषित शक्तियों से जुडा हुआ है, अत: इसका विकास, इसका भविष्य भी उन्हीं शक्तियों से जुडा हुआ है । रचनाकार अब व्यवस्था को लेकर किसी भ्रम को नहीं पाले है, उसके लिए इब यह स्पष्ट है कि केवल व्यवस्था का विरोध करते रहना सार्थक नहीं,साहित्य स्वायत नहीं हो सकता उसका अपने युग की परिस्थितियो से, समाज से गहरा संबंध है, अत: साहित्य या साहित्यकार का राजनीति से विलगाव रखना बुद्धि-मत्ता नहीं है । साहित्य को राजनीति से तथा साहित्यकार को सक्रिय राजनीति से जुडना ही होगा । वस्तुत: जब विस्तृत होते हुए आर्थिक संकट मनुष्य को मोहभंग की स्थिति में ला पटकता है तो साहित्यकार के लिए झूठे स्वप्नों की नुमाइश

लगाए चले जाना संभव नहीं रह जाता ।

ऐसी ही स्थिति का उद्घाटन हुआ बुद्धिजीवियों के समक्ष जब उसने देखा कि शासक वर्ग का उद्देश्य मात्र सत्ता हथियाना है, जन-हित में उसकी कोई रूचि नहीं है । गरीबी-हटाओ का नारा देकर उसने गरीबी का समर्थन तो पा लिया किन्तु शासन पाने के बाद कथनी और करनी में अंतर बनाए रखा । मुद्रा-स्फीति पर भी कोई रोक नहीं लग पाती है । प्रतिव्यक्ति आय बढने के बावजूद क्रयशक्ति घटती जाती है, सन्"75 तक, पिछले 12 वर्षों में उत्पादकता की दर केवल 1·4% ही बढी[1] सन् 71-72 में अपने पडोसी देश की रक्षा के लिए भारत वर्ष रक्षा-खर्व में बजट से 15,250 करोड रूपए खर्च करता है [2] सन् 76-77 में दूसरे देशों से 12·060 करोड रूपए ऋण लेने की योजना बनती है और इससे दोगुनी रकम 25,440 करोड रूपए रक्षा-खर्व रखा जाता है । बजट बनाया जाता जनसाधारण के हित के लिए और उसमें पूरा सहयोग दिया जाता उद्योगपतियों व उद्योगों के विकास को/पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की प्रतियोगिता और साम्राज्यवादी देशों की आर्थिक सहायता की अनिवार्यता का यह नतीजा है कि व्यक्तिगत क्षेत्र में लगी 6000 करोड की पूंजी में 3200 करोड की पूंजी देश के 75 इजारेदार घरानों के हाथ में चली गई है । जिनके सैकडों करोड के सलाना मुनाफे उनकी दौलत में बेतहाशा वृद्धि कर रहे है और विदेशी पूंजी के सूद मुनाफे के रूप में 500 करोड से अधिक रूपया प्रतिवर्ष विदेशों को चला जाता है । भारतीय अर्थव्यवस्था विदेशी ऋण पर निर्भर होता जा रही थी और भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों का जाल बिछता जा रहा था । सन् 1975 तक भारत भर में 202 पंजीकृत बहुराष्ट्रीय निगमों की 503 शाखाएं खुल चुकी थी जिनमें 301 ब्रिटेन की, 81 अमरीका की,20 जापान की, 12 पश्चिम जर्मनी तथा शेष अन्य देशों की

---

1·भारतीय रिर्जव बेंक, रिपोर्ट,अगस्त 1976

2· बंगला देश के लिए पाकिस्तान से युद्ध 71-72" में ।

थी ।1। उद्योगों के विकास में पूंजीपति देशों का सहयोग निस्वार्थ नहीं था, बद बदले में वे देश की आर्थिक और राजनीतिक स्वाधीनता में हस्तक्षप करते हैं । अपनी पूंजीवादी संस्कृति का प्रचार करते हैं ।

इस उपनिवेशवादी संस्कार से पाठकों एवं लेखकों को मुक्त करने के लिए बडी पूंजी की सिरपरस्ती में आई साहित्यिक प्रवृत्ति के विरोध में केरल से काश्मीर और आसाम से चंडीगढ़ तक नये लेखकों की रचनात्मक शक्ति का अहसास छोटी पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ । इन पत्रिकाओं के द्वारा एक मजबूत रचना शक्ति उभरकर आई । जिसमें व्यवस्था विरोध आधारहीन न होकर पूंजीवादी, सामंती शक्तियों के विरुद्ध ~~एक~~ समझौता हीन संग्राम की प्रक्रिया बना ।

इस दशक के लघु पत्रिका आंदोलन के संबंध में अध्ययन योग्य जो विशिष्ट पहलू है उनमें सबसे महत्वपूर्ण है इस दौर में लघु पत्रिकाओं का वैचारिक ध्रुवीकरण तथा वामपंथी विचार धारा का पत्रिकाओं पर व्यापक प्रभाव ।इसके अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण पहल है आपातकाल" के दौरान आंदोलन में बिखराव तथा स्थिरता के लक्षण । तथा आपातकाल के बाद पुन: जीवित हुई पत्रिकाओं की प्रकृतिगत भिन्नता ।

भारतीय राजनीति में वामपंथी विचारधारा का प्रभाव बढता जा रहा था । राजनीतिक पार्टियों के आणविक विखंडन तथा समाजवादी विचारों के विस्तार के कारण विभिन्न समाजवादी पार्टियों का जन्म हुआ। प्रजावादी पार्टी समाजवादी पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के विभाजन से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी (1964), ~~तथा~~ पुन: मार्क्सवादी पार्टी में 1969 में विभाजन से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) अस्तित्व में आई । प्रभुत्वशाली कांग्रेस पार्टी को भी इस बढते प्रभाव को ग्रहण करना पडा, जिसके परिणामस्वरूप शासक वर्ग ने "समाजवादी" मार्ग पर चलने की घोषणा कर समाजवाद का मुखौटा ओढा । पश्चिम बंगाल, केरल,आंध्र तथा इनके पडोसी राज्यों में विभिन्न क्रांतिकारी आंदोलनों ~~की~~ ~~सफलता~~ ने

~~पडोसी राज्यों ने विभिन्न क्रांतिकारी आंदोलनों~~

1. लिंक, 4.4.1976

कम्युनिस्ट पार्टी की लोकप्रियता बढाई । पश्चिम बंगाल में नक्सलबाडी में हुआ आंदोलन शहर के उच्च मध्यवर्गीय नवयुवकों को बहुत अधिक प्रभावित करता है ।

नक्सलबाडी आंदोलन सन"67 से "72 तक पूरे रूप से पश्चिम बंगाल के बहुत से हिस्सों में फैल गया था । इसका आंरभ सिलीगुडी के पास नक्सलबाडी नामक स्थान से हुआ, जहां स्थानीय मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से अलग होकर एकस्वतंत्र गुट बनाया जिसे भा०क०पा० (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) नाम दिया । यद्यपि यह एक राष्ट्रीय पार्टी का रूप नहीं ले सकी किन्तु इस आंदोलन के क्रांतिकारी चरित्र की ओर मध्यवर्गीय शिक्षित युवक आकर्षित हुए ।

नक्सलवाद अनिवार्य रूप से एक नगरीय और मध्यवर्गीय परिघटना (फेनोमेनन) था । "जहां बंबई में शहरी मध्यम वर्ग का असंतोष एक दक्षिणपंथी संगठन शिवसेना के जरिए अभिव्यक्त हुआ, वहीं कलकत्ता में नक्सलवादी"माध्यम बन गए, जिसके जरिए ऐसे असंतोष को अभिव्यक्ति मिली । दोनों मामलों में कारण एक ही था-असंतोष और आंदोलनों का चरित्र नगरीय ।(1) शुरू से ही नक्सलवादियों ने नगर के विशाल मध्यमवर्ग के बडे भाग से समर्थन नहीं तो हमदर्दी तो हासिल कर ही ली थी । यह वर्ग नक्सलवादियों को होनहार नौजवान लड़कों के रूप में देखता था जो अपनी आजीविका और प्राणों की परवाह किए बिना साहस और दृढ निश्चय के साथ एक उच्च ध्येय की खातिर लड रहे थे । अनेक मध्यवर्गीय बंगाली समर्थकों के लिए नक्सलवाद राजनीतिक विचारधारा कम और"ऐक्शन" का तरीका अधिक था । उनके लिए नक्सलवादी किसी हिंसात्मक और शक्तिशाली चोजक का द्योतक था । कुछ ऐसा जो मौजूदा सामाजिक ढांचे को, जिसे वे जड-मूल तक सडा गला मानते थे, तहस नहस करने की क्षमता रखता था ।

क्रांति की रोमांटिक अवधारणा, व्यक्तिगत स्तर पर व्यवस्था बदलने, क्रांति लाने के प्रयास तथा गोरिल्ला युद्ध चरित्र, नक्सलवादी आंदोलन

---

1. विप्लव दास गुप्त- नक्सलवादी आंदोलन, पृ० 226

का यह प्रभाव पिछले निषेधवादी साहित्य आंदोलनों में भी मिलता है । और अब तक भी बना हुआ था । युवाओं के लिए नक्सलवादी बनने का विचार गर्व और गौरव का बात ~~बनी हुई~~ थी । नक्सलवादी विचारधारा के समर्थन में अनेक साहित्यिक रचनाएं तथा पत्रिकाएं प्रकाशित हुई । 1967 के लगभग कलकत्ता से "सनीचर" नाम की पत्रिका लगभग ऐसे ही तेवर लिए हुई थी । इस दशक के मध्य में घोषित रूप से इस दल की एक पत्रिका "हिरावल" प्रकाशित हुई । कमोबेश प्रभाव लिए और भी बहुत सी पत्रिकाएं मिल सकती है, जिनमें "पुरुष, प्रतिबद्ध" महत्वपूर्ण नाम हैं ।

वामपंथी विचारधारा से लैस कई अन्य ऐसी पत्रिकाएं भी प्रकाशित हुई, जिन्होने किसी दल विशेष से तो अपना संबंध नहीं जोड़ा किन्तु व्यापक स्तर पर सर्वहारा वर्ग की राजनीति का समर्थन किया इनमें प्रमुख हैं- वाम, प्रांरभ, प्रारंभ, समारंभ, गोधूलि विध्वसं, उत्तररीती, क्यों, परिपत्र, कालपत्रि, इबारत आमुख कथन, प्रतिबद्ध, कविता, प्रतिमान कलम, समभाव, कालबोध, अनाहूत आदि ऐसे अनकेकों नाम हैं । पहले, उत्तरार्द्ध तथा बाद में उत्तर गाथा क्रमशः भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तथा (अन्य दो) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के सहायोग से निकलती रहीं है । "आवेश" यद्यपि अकवितावादियों की पत्रिका थी । किन्तु इसमें सभी प्रकार की रचनाओं को स्थान देने की उदार-नीति अपनाई । "अभीक" व्यंग्य प्रधान तथा "लघु कथा" लघुकथाओं के लिए अपने ढंग की पहली पत्रिका रहीं ।

सन 70 से 80 तक प्रकाशित हुई प्रमुख पत्रिकाओं का यदि अध्ययन किया जाए तो कुछ ऐसे मुद्दे सामने आते है जिन पर प्रायः सभी पत्रिकाओं में विचार किया, कमोवेश सभी पत्रिकाएं जनवदी प्रकृति की रही । किन्तु उतरार्द्ध काल, अर्थात्, आपातकाल के बाद से पत्रिकाओं में विरोध का स्वर अधिक तीखा हुआ मिलता है ।

ऐसा आपातकाल के दौरान जनतांत्रिक अधिकारों पर लगाए गए प्रतिबंधों तथा जनतंत्र पर हुए हमलों के कारण हुआ । जिसका अध्ययन इस अध्याय में बाद में किया जाएगा । यह सन् 75 से पहले तथा "77 कि प्रकाशित पत्रिकाओं के अध्ययन से ज्ञात हो सकता है कि "77 के बाद लिखा गया प्रतिबद्ध साहित्य पूर्वार्द्ध के साहित्य से किस प्रकार मिला है ।

दशक के पूर्वार्द्ध में प्रकाशित हुई प्रमुख पत्रिकाएं हैं - ओर, अब, अर्थात्, इंगित, इतरेतर, उत्तरशती, ऋतुजा, अभीक, कंक, कथा, क्यों, कालपत्र, कैमूर, गोधूलि, पुरुष, परिवेश, पहल, प्रारंभ, भंगिमा, बातचीत, युवा, लघुकथा, व्यंग्य, वाम विध्वंस समभा आदि ।

सन् "75 के बद भी पत्रिकाएं है- आइना, इसलिए, इबारत, इदभौ उदाहरण, ऋतुचक्र, अभी, अभिव्यक्ति, अनाहूत, अंतत:, अंतर्गत, आवेश, कथन, कदम, कलम, कालबोध, दीर्घा, दिशाबोध, हिरावल, धरातल, परिपत्र, प्रतिबद्ध कविता, फिर, यथार्थ, युग परिबोध उत्तरराधी, उत्तरगाथा आदि ।

लघु पत्रिका आंदोलन का यह दशक विकास की दृष्टि से कुछ दुर्भाग्यपूर्ण रहा, जब आपातकाल के दौरान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर रोक लगा दी गई, व्यापक स्तर पर नागरिक अधिकारों का हनन हुआ, साहित्य एवं कला का ह्रास हुआ । ऐसी स्थिति में, विशेष रूप से लघु पत्रिकाएं दमन का शिकार बनी। ~~आंदोलन के आरंभ से ही लघु पत्रिकाएं दमन का शिकार बनी~~ । अपने आंदोलन के आरंभ से ही लघु पत्रिका- पूंजीवादी सामंती व्यवस्था एंव मूल्यों का विरोध करती रही है अत: तानाशाही सहन कर पाने की इससे उम्मीद नहीं थी । इस कारण अनेक प्रेस अधिनियम बनाकर ऐसी पत्रिकाओं के प्रकाशन पर सेंसर शिप लगा दी गई । समाचार-पत्र भी इस दमन के शिकार हुए इन प्रतिबंधों से विरोध प्रकट करते हुए, 26 जून"77 को अधिकांश समाचार पत्रों ने उस और अगले दिन के संपादकीय स्तंभ खाली छोड दिए गए । ~~इन प्रतिबंधों से विरोध प्रकट करते हुए, 8 जून"77 को अधिकांश समाचार पत्रों ने उस और अगले दिन के संपादकीय स्तंभ खाली छोड दिए थे~~ ।

यह मूक विरोध था । किन्तु तमाम प्रतिबंधों के बावजूद "मदरलैंड "पत्र ने अपना उस दिन का अंक पूर्ववत गरिमा और दहाड के साथ निकाला, जिससे विपक्ष के तमाम नेताओं की गिरफ्तारी का सचित्र विस्तृत समाचार छपा ।

एक तरह से आपातकाल बुद्धिजीवियों तथा पत्र पत्रिकाओं की क्रांतिकारिता का परीक्षण-काल सिद्ध हुआ । दमन और अत्याचार के क्रूर पाश से बचने के लिए विरोध के अनेक क्रांतिकारी स्वर या चुप हो गए या समर्थन में तबदील हो गए । यह दुर्भाग्यपूर्ण घटना लघु पत्रिकाओं पर भी बीती । प्रेस अधिनियमों के खौफ दिखाकर या तो पत्रिकाएं जबरन जब्त कर ली गई या वे स्वयं बंद हो गई । आपातकाल के पूरे दौर में मात्र 4 या पांच पत्रिकाएं को छोडकर शेष लुप्त हो गई । साधनहीनता के कारण कुछ पत्रिकाएं इस आतंकमय वातावरण में स्थानीय स्तर तक ही सीमित रह गई । प्रकाशित प्रमुख पत्रिकाओं में अधिकांश ऐसी थी जिनके पीछे समर्थकों का एक विशाल समूह था अथवा जो साधन सम्पन्न थी । ऐसी पत्रिकाओं में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा सहयोग प्राप्त "पहल" तथा मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की "उत्तरार्द्ध" दो मुख्य पत्रिकाएं थी, हिरावल (मार्क्सवादी लेनिनवादी पार्टी की पत्रिका) तथा संचेतना" के भी कुछ अंक संभवत: इस दौरान प्रकाशित हुए । अभिव्यंजना (सं0मीरा सिन्हा),आवाम-मित्र तथा इस प्रकार की कुछ अन्य पत्रिकाएं किसी प्रकार संघर्ष करते हुए अपना अस्तित्व बनाए हुई थी । इस दौरान प्रकाशित हुई इनमें से अधिकांश पत्रिकाएं अपने स्तर पर तानाशाही और आपातकाल का विरोध कर रही थी । देश भर में फासिस्ट विरोधी सम्मेलन हो रहे थे ।

आपातकाल की बंदिशों में साहित्य तथा पत्रिकाओं को परोक्ष रूप से जो नई प्रवृत्तियां दी वह बहुत महत्वपूर्ण है । आपातकाल तथा इसके बाद पत्रिकाओं में (1) अनूदित साहित्य का विकास हुआ, (2) अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्ति करने की बिम्बों, प्रतिबिम्बों की बहुतायत वाली नयी शैली का प्रचलन हुआ । (3) साहित्य में नए सौन्दर्य शास्त्र का चिंतन हुआ ।

आपातकाल में प्रकाश्य सामाग्री के लिए "मनाही की लंबी सूची को देखते हुए, इन दो वर्षों में लिखे गया अधिकांश साहित्य, प्रकाशन के उद्देश्य से नहीं रचा गया । लेखक अपनी रचना के बदले में कोई खतरा मोल लेना नहीं चाहते थे । इसी कारण इस बीच प्रकाशित हुई पत्रिकाओं को रचनाओं के अभाव का सामना करना पड़ा । संपादक या स्वंय लिख-लिखकर छापते अथवा पुरानी पूर्व प्रकाशित ऐसी रचनाएं छापते जिनके रच यिता अब जीवित न हो । इसके लिए ही प्रेमचंद, निराला, भारतेन्दु, मुक्तिबोध जैसे साहित्यकारों की कालजयी रचनाओं का सहयोग लिया गया । इन परिस्थितियों में विदेशी साहित्यकारों विशेषकर जर्मन, अफ्रीकी तथा लातिन अमरीका के क्रांतिकारी साहित्य का प्रचलन हुआ । स्पेनी, चीनी, रूसी कवियों की रचनाओं का अनुवाद हुआ ।

"तनाव" का अनुवाद अंक मई"79" में छपा जिसमें ब्रेष्ट, यहोनेस बोब्रोवस्की, पीटर हूरोल, एडवर्ड टामस, फाजिल हुसनू दाग्लारका, येहूदा अमीचाई, हावर्ड मेकार्ड, मयोपीय बेसिसो आदि लगभग 30 निदेशी कवियों की कविताओं के अनुवाद छापे गए जो देश की वर्तमान स्थिति के लिए, भी सार्थक थे -

"तुम कहते है ।
यह हमारे लक्ष्यों के लिए बुरा है
अंधेरा घना हो रहा है, शक्तियां घट रही हैं
अब जबकि हम इतने बरसों काम कर चुके हैं
शुरुआत से भी गई गुजरी हालत में फंसे है
लेकिन दुश्मन वहीं खड़ा है, पहले से कई गुना शक्तिशाली
उसकी श क्तियां बढ़ी लगती हैं, वह कमोवेश अजेय होता
जा रहा है॥1॥

"हिरावल" में फ्रांसीसी मजदूर कवि एजेन पोतिए का "इंटरनैशनल" तथा परिचय बंगाल व बिहार के जेलों में लिखी गई बाहर क्रांतिकारी कविताएं प्रकाशित होती है । तुर्की की आजादी के कवि"नाजिम हिकमत की

तुम्हारे हाथ/पत्थरों की तरह संगीन है। जेल में गाए गए गीतो की तरह उदास हैं/ बोझ ढोने वाले पशुओं को तरह सख्त है"

---

1• "बर्तोल्ट ब्रेष्ट, तनाव, मई"79 पृ•4

इस क्रांतिकारी कविता का चित्रांकन छपता है । "इबारत" के चौथे अंक में "माओ" व "चेन" थी, चीनी क्रांतिकारियों की कविताएं प्रकाशित हुई । (1) इस सबके माध्यम से भारतीय हिन्दी पाठक विदेशी साहित्य तथा सि साहित्यकारों से परिचय पाता है । "पहल (2) ने "अंगोला राष्ट्र तथा "पाल रॉबसन" क्रांतिकारी कवि का परिचय देकर तथा "क्यों" (3) पत्रिका "काले साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र" व समकालीन काला साहित्य" लेखों की माध्यम से अफ्रीकी साहित्य पर विचार कर विदेशी साहित्य का ज्ञान देने की दिशा में प्रयास किया ।

अनूदित साहित्य के विकास के साथ, साहित्य, विशेष रूप से कविता में जो एक नई शैली विकसित हुई वह थी प्रतीकों व बिम्बों का प्रचलन । वर्तमान राजनीति के खतरों से नए पुराने सभी जनवादी कवित आगाह हो चुके थे । इस दशक में पूर्वार्द्ध में राजनीतिक कविता लिखने की दिशा में कई प्रयास हुए । नागार्जुन ने सन् "71 के चुनावों में हुई धांधली पर रोष प्रकट किया -" अब तो बंद करो

हे देवी
चुनावों का यह प्रहसन"

शमशेर, त्रिलोचन, केदारनाथ जैसे पुराने प्रगतिशील कवियों के साथ आलोक धन्वा, वगणुगोपाल, कुमारेन्द्र, मनमोहन जैसे जनवादी कवि सभी के जनवादी गीतों, राजनीतिक कविताओं में तानाशाही के भावी खतरों का अंदेशा व्यक्त हो रहा था —

"एक दिन इसी तरह आयेगा - रमेश
कि किसी की कोई राय न रह जायेगी - रमेश
क्रोध होगा पर विरोध न होगा
अर्जियों के सिवाय - रमेश
खतरा होगा खतरे की घंटी होगी
और उसे बादशाह बजायेगा - रमेश । "

(रघुवीर सहाय)

1. इबारत फरवरी/मार्च 77
2. पहल मई 76
3. क्यों" 3 तथा 8

इस पूर्वार्द्ध की कविताओं की वक्तव्य बाजी, आक्रामक रूप के बदले आपातकाल में इस कवियों का स्वर अधिक संयत और धारदार हो गया । आपातकाल के दौरान जब अभिव्यक्ति की आजादी जैसे बुनियादी अधिकार छिन गये तो कवियों को अभिव्यक्ति के पुराने माध्यम, भाषा अपर्याप्त लगने लगी । अत: नये रूप विधान की खोज हुई, नये बिंब व प्रतीक विधानों के माध्यम से नये अर्थों की अभिव्यंजना हुई । पंचतंत्र तथा अन्य सुपरिचित उपादानों के माध्यम से गहरे अर्थों की व्यंजना का प्रयास किया । समकालीन कविता में अगर भेड़िया, तेंदुआ, कुत्ते, शेर, चीता, सूअर गरज कि जंगली व्यवस्था की तमाम सामग्री मौजूद है और दूसरी तरफ चिड़िया, पेड़-पौधे, नदी-झरने, आसमान, बादल, हवा, पेड़ और पहाड़ है । यह हरेक वस्तु को काव्य का विषय बनाने की कोशिश भर नहीं है, चीजों की महज वापसी भी नहीं वरन् चीजों को उसके सही नाम से पुकारने की कोशिश है,

कठफुड़वों के देखो ठाट ।
थोड़ा-थोड़ा करके फोड़ा,
पीपल की कोटर का काठ,
काठ फोड़कर अंदर बैठे,
सुविधाओं का ओढ़ लिहाज ।
बाहर आंधी और तूफान
सर्दी गर्मी पानी लू
जंगल में फैली आग,
जंगल जलता धू, धू धू !
मौसम की लाखों मनमानी
तरह तरह के अत्याचार
घोर नरक का हाहाकार !

1. मोदत्त, उत्तरार्द्ध-16 पृ० 99

राजा जी के घोड़े दौड़े सरपट मोरे रामा !
धूल उड़ी सारी बस्ती में जमघट हुइगा रामा !!xxxx
राजा जी के प्यादे फर्जी मंडराते है अइसे
खड़ी फसल पर घिर आये हों टिड्डी x के दल जइसे,
टैक्स लगानों में पिस गये हम कानूनों की मार में
हाड़ तोड़ मेहनत का चूना परकद हुइगा रामा ! (1)

इकड़म-तिकड़म
बम्बे सौ
उनके बंगले पूरे सौ
उनके घर सड़ता है खाना
हमको मुश्किल x अन्न जुटाना (2)

इस प्रकार की अनेक कविताएं इन पत्रिकाओं में मिल जायेंगी जिनमें प्रकृति-पशु-पक्षी अथवा लोकगीतों में x को नया संदर्भ दिया गया है । "जीवन के सुंदर और कुरूप, मानवीय और अमानवीय पक्ष समकालीन कविता में विरूद्धों के कलात्मक सामंजस्य के साथ मौजूद है. प्रकृति के सहज और परिचित उपादानों के प्रति कवियों का जो आग्रह बढ़ा है वह इनके स्वस्थ सौंदर्य दृष्टि का परिचायक है।" (3)

==========================================================

1xxमोदस्मःxउत्तरार्द्धxx6xपृ077

1• महेंद्र नेह, उत्तरार्द्ध-जनवरी 78
2• अश्व घोष, उत्तरार्द्ध-अगस्त 77
3• समकालीन कविता:जनवादी संदर्भ, चारूमित्र, उत्तरार्द्ध-अक्तूबर 77 पृ० 138.

कविता के इन बदले शिल्प ने कविता के लिए नये प्रतिमान और नये सौंदर्यशास्त्र की मांग की ।§1§ आलोचकों ने इस मुद्दे पर विचार किया । इस दौर में प्रतिबद्ध साहित्य§2§, जनवादी साहित्य§3§, राजनीति से साहित्य का संबंध§4§, साहित्य का सामाजिक दायित्व§5§, साहित्य के माध्यम से व्यवस्था विरोध, समकालीन साहित्यिक परिदृश्य§6§ आदि विषयों पर भी विचार हुआ.

आपातकाल की पाबंदियों के फलस्वरूप 'अभिव्यक्ति की आजादी' पर भी बहस चली तथा प्रचार माध्यमों व लघु-पत्रिकाओं के जनवादी चरित्र का विश्लेषण हुआ ।

==========


1. नये सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता-डा0 शिवकुमार मिश्र, क्यों-9

2. आज का वैचारिक लेखन-समझ 4/

प्रतिबद्ध कविता: कुछ मुद्दे-प्रतिबद्ध कविता

युवा लेखन: प्रतिबद्धता-समझ 74

प्रतिबद्धता, लेखन के प्रति: समाजवादी क्रांति के प्रति-भंगिमा

प्रतिबद्धता विशेषांक-गवाह

3. जनवादी साहित्य: सवाल-यथार्थ

जनवाद और जनवादी लेखन -कलम

समकालीन जनवादी कविता-वंक

4. साहित्य और राजनीति-परिपत्र

पक्षधरता और साहित्य-क्यों-8

5. साहित्यकार की सही भूमिका-उत्तरार्द्ध-4

साहित्यकार की प्रतिबद्धता और उससे अपेक्षित सक्रियता-भंगिमा

प्रतिबद्धता के बारे में नयी बहस-और-7।

6. आज की कविता और राजनीतिक चेतना

हिंदी का समकालीन साहित्यिक परिदृश्य-इबारत

जनवादी रचना, पहचान और परख-मंच

शासक वर्ग के हमले प्रचार तंत्रों के माध्यम से परोक्ष रूप से भी होते रहे अत: ऐसे माध्यमों के खतरनाक प्रभाव को प्रति पाठकों को सचेत किया जा रहा था । लघु पत्रिकाएँ भी अपने स्तर पर इस परोक्ष हमलों से लड़ रही थी, आज भी लड़ाई जारी है । किंतु, ज्यों-ज्यों लड़ाई तेज होती है हमले दिशा बदलकर पुन: आरंभ हो जाते हैं.

इस दौर में ये हमले हुए प्रतिष्ठानों की छद्म लघु पत्रिकाओं तथा साहित्य अकामियों की पत्रिकाओं द्वारा । इधर बहुत सी ऐसी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं जो अपने स्वरूप व प्रकृति में तो लघुपत्रिका लगती है, किंतु उनके पीछे बड़ी पूंजी का सहयोग है अथवा ऐसी पत्रिकाएँ भी निकली जिनका उद्देश्य आंदोलन को आगे बढ़ना नहीं वरन् विज्ञापनों को एकत्रकर आय का जरिया हासिल करना था ।'साक्षात्कार' जैसी प्रतिष्ठानी पत्रिका ने जनवादी रूप धारण करने का प्रयास किया । मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् ने 'पूर्वग्रह' का प्रकाशन कर अकादमिक पत्रिकाओं में एक संख्या और बढ़ा दी । यद्यपि यह पत्रिका मध्य प्रदेश राज्य सरकार के धन पर निकल रही, किंतु इसमें रचनाओं के चयन में 'उदार दृष्टि' अपनाते हुए पाठकों के सम्मुख इसे 'जनवादी' सिद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है ।

केवल 'आमदनी' बनाने के उद्देश्य से ऐसी अनेकों पत्रिकाएँ प्रत्येक अंचल से निकली जिनका साहित्यिक योगदान शून्य कहा जा सकता है । लघु पत्रिका आंदोलन को बढ़ाने का इनका कोई ध्येय नहीं है किंतु आंदोलन को ये क्षति अवश्य पहुंचा रही है ।

कुल मिलाकर इस दशक का लघु पत्रिका आंदोलन अवरुद्ध गति से विकसित हुआ । इससे पहले कि आंदोलन अपना चरम विकास पाता इसमें बिखराव आ गया । बिखराव के लिए जितने जिम्मेदार अंदरूनी तत्व रहे, उनसे कहीं अधिक बाहरी आक्रमण थे, इस सबके बावजूद, सन् 75 से 77 तक के प्रतिकूल वातावरण के बाद पुन: लघु-पत्रिका ने अपना आंदोलनकारी रूप धारण कर लिया । आपातकाल के अवरोध ने जो सकारात्मक प्रभाव इस आंदोलन पर डाला वह है -- विरोध की वह पैनी शैली और धारदार स्वर जिससे सन् 75 और इसके बाद के साहित्य और पत्रिकाओं को नया संदर्भ, नये प्राण मिले ।

लघु पत्रिकाएँ आज भी निकल रही है और अपने युग की रचनात्मक उर्जा की अभिव्यक्ति का सशक्त व सही माध्यम बनी हुई है । लघु पत्रिका के जीवन के प्राणघातक संघर्ष को देखते हुए इस आंदोलन का आज जो रूप है, युगीन संदर्भ में सराहनीय माना जाना चाहिए ।

चतुर्थ अध्याय

## 7वें तथा 8वें दशक में लघु पत्रिका का साहित्यिक योगदान

छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता आदि विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों के प्रचार-प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यदि ये कहा जाए कि पिछले कई दशकों से हिन्दी साहित्य लघु-पत्रिकाओं के माध्यम से ही प्रकाश में आता रहा है तो ये अतिशयोक्ति न होगी। लघु पत्रिका ने जब से एक आंदोलन का रूप लिया है तभी से इसने पाठकों को अपने देश तथा विश्व के श्रेष्ठ साहित्य से परिचित कराने का बीड़ा उठाया। न केवल ये बल्कि विभिन्न विषयों पर गंभीर वैचारिक बहस चलाकर इन पत्रिकाओं ने पाठक को प्रबुद्ध बनाया तथा सही मार्ग दर्शाया है।

विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों के समर्थन में पत्रिकाएं प्रकाशित हुई जिसमें उस आंदोलन के सिद्धांतों तथा विचारधाराओं का प्रचार किया जाता रहा है। इन साहित्यिक आंदोलनों के वैचारिक मुद्दे भी भिन्न-भिन्न रहे हैं प्रयोगवादियों ने साहित्य को स्वायत्त सिद्ध करने का प्रयास किया, अकवितावादियों ने एक ओर परंपराओं का तो दूसरी तरफ व्यवस्था का विरोध किया। तथा इन सभी साहित्यिक प्रवृत्तियों का मूल्यांकन तथा प्रगतिशील साहित्य की परंपरा का पुनर्निर्माण जनवादी साहित्य की हिमायती पत्रिकाओं ने किया।

सातवें और आठवें दशक की लघु पत्रिकाओं में पूर्ववर्ती साहित्यिक आंदोलनों का मूल्यांकन हुआ साथ ही साथ इनमें साहित्य को समाज तथा राजनीति से जोड़ने की दिशा में भी प्रयास हुआ। इस दौर के मुख्य वैचारिक मुद्दे थे -

1. पूर्ववर्ती साहित्यिक आंदोलन
2. जनवादी-प्रतिबद्ध साहित्य
3. साहित्य तथा व्यवस्था विरोध

4· साहित्य एवं पत्रिकाओं का व्यवसायीकरण

5· लघु पत्रिका का महत्व

आजादी के दस साल बाद प्रगतिवाद और प्रयोगवादी आंदोलन के शांत होने के बाद "नयी कविता" सक्रिय हुई । "नयी कविता जिस युग की उपज है वह युग पीडा बोध अधिक दे सकता था विद्रोह कम । स्वराज्य प्राप्ति की आरंभिक बेला में जो यातना या दर्द उग आया था, वह अपने साथ भविष्य के प्रति विश्वास और आशा का स्वर भी अक्षय ही लिपटाये था । एक द्विधा थी - पीड़ा और आशा की, टूटने की वास्तविकता और बनने के सपने की जिसमें पीड़ा या टूटना अधिक था । बनने की आशा और सपना कम । मोहभंग पूरे रूप में नहीं हुआ था । इसलिए नयी कविता में यातना बोध है, अस्वीकृति का स्वर भी है किन्तु विद्रोह का उभार नहीं ।[1] किन्तु जैसे-जैसे भ्रम टूटते गये, इच्छाएं अतृप्त रह गई, सामाजिक परिवेश और भी कुरूप होता गया, नयी कविता का स्वप्नलोक भग्न होने लगा । साहित्य के सामने दो ही रास्ते थे या तो वह नयी कविता के प्रधान स्वर में स्वर मिलाकर पीड़ा की मुक्त अनुभूति को और गहनता से व्यक्त करता अथवा ये सारी परिस्थितियां उसके संवेदनशील मन को झकझोरती और यातना के बीच से उभारकर उसे विद्रोही बनाती, सब कुछ अस्वीकृत करने को प्रेरित करती ।

सब कुछ को अस्वीकृत करने के रोष में युवावर्ग अमरीकी कवि गिन्सबर्ग को आदर्श रूप में देखता है -

"दूर एलन गिन्सबर्ग सैनफ्रांसिसको से, इधर दशाश्वमेध, संगम
की ····· चिलम संध्याओं में सुलग गांजा सा लाल उठता है,
लपक - कुछ नये युग के नशे सा ।" [2]

अमरीकी बीटनिकों के हिप्पी जीवन का अनुकरण करते हुए पहले बंगला में फिर हिन्दी में भूखी पीढ़ी, श्मशानी पीढ़ी तथा नंगी कविता जैसे काव्यांदोलनों की

---

[1] रामदरश मिश्र, धर्मयुग 4 दिसंबर 66 पृ-10
[2] शमशेर, कल्पना जुलाई 63

की लहर आई । इनका समर्थक भारत की आजादी के बाद जन्मा वह शिक्षित मध्यवर्गीय युवा था जो अपनी महत्वाकांक्षाओं को जब पूरी होते नहीं देख पाया तो निराशा, घुटन, संत्रास, आत्महत्या, विसंगति, अराजकता, अलगाव, पलायन, नशा और इसी तरह की अन्य प्रवृत्तियों का शिकार हो गया । इनका विद्रोह संपूर्ण के नकार से था और विरोध सभी प्रकार के सामाजिक बंधनों से ।

इक्कीसवीं शताब्दी की
इस बेरौनक गोचर (गोबर ?) लोकतंत्र में जीना है तो
वेश्या की सार्वजनिक योनि से संभव (संभोग ?) करना है (1)

सर्वनिषेध की मुद्रा वस्तुत: हिप्पी मुद्रा है । हिन्दी कविता में इस मुद्रा की अभिव्यक्ति अकविता/अकहानी आंदोलनों में हुई । अपने दुखों को "ग्लोरीफाई" करते हुए साहित्य में नकली विद्रोह उत्पन्न किया गया और व्यापक मानवीय संवेदनाओं से साहित्य को "साइड्ट्रेक" करने का प्रयास किया । ये पूरी अश्लीलता से नाटकीय मुद्राओं में साहित्य में आए इस वकालत के साथ कि वे समाज बदल डालेंगे पर उन्हें नहीं मालूम था कि इस तरह के नकली विद्रोह और अश्लीलता से परिवर्तन की भूमिका निर्मित नहीं हो सकती, सत्ता में इन अश्लीलताओं को हजम करने की अद्भुत क्षमता होती है, क्योंकि सत्ता का समूचा ढांचा ही अश्लीलता पर टिका होता है "बुर्जुआ साहित्यकार चिंतन और कृतित्व के स्तर पर दक्षिण पंथियों के पोषक होते हैं और ऐसे सभी कृत्यों और विद्रोहों की पीठ ठोकते हैं जिनका संबंध सर्वहारा के हितों के विरोध में होता है यानी उनका यथार्थ शोषण का इतिहास है और प्रतिगामी है । वे सामाजिक यथार्थ के उस हिस्से पर पच्चीकारी करते हैं जिसके भटकाव में आदमी के अहम और व्यापक प्रश्न गौण हो जाते हैं । साहित्य में जब सेक्स की अंधी गलियों में भटकाने का दुष्चक्र चलाया

---

(1) कथा - 5, नवम्बर 75 पृ-12, लीलाधर जगूड़ी

गया तब भी यही मंशा काम कर रही थी । §1§ श्मशानी पीढ़ी और अकविता की मुख्य क्रांति "सेक्स" की थी नया क्रांतिकार और हजार बातों को दरगुजर कर सकता है, सेक्स के मामले में किसी बंधन को स्वीकार नहीं कर सकता । आधुनिक क्रांति की पहली सीढ़ी है - सेक्स के मामलों में पूरी आजादी । क्रांति की इस पहली सीढ़ी का समर्थन करने के लिए न केवल व्यवस्था के पत्रों के पृष्ठ ही हाजिर हैं, यह मांग उठाने के लिए व्यवस्था भरपूर पारिश्रमिक देने के लिए भी तैयार है । §2§ अकवितावादी रचनाओं में इस प्रकृतवादी नकारवाद की खुली अभिव्यक्ति हुई और इसीलिए अकवितावादी साहित्य आंदोलन को शासक वर्गों की ओर से प्रोत्साहन एवं स्वीकृति मिली । "एक तो अपने सतही विद्रोह के तेवर के कारण ऐसी रचनाएं लोगों की दबी हुई घुटन का मवाद बाहर निकालने का गैर खतरनाक माध्यम बनीं । इसके अलावा इस प्रकार के आक्रोश को जनवादी मूल्यों और जनवादी आस्था पर आक्रमण करने तथा संघर्ष की राजनीति की खिल्ली उड़ाने के लिए खूब इस्तेमाल किया जा सकता था । ऐसा करते हुए भी इसे विद्रोही राजनीति का पर्याय बताकर उसे विवेकहीन और अतिवादी घोषित किया जा सकता था । ज्यों-ज्यों सामाजिक संकट गहराता गया त्यों-त्यों इस प्रकार के दनदनाते आक्रोश का स्वर हिन्दी कविता में बढ़ने लगा । §3§

स्थिति का पूरा फायदा उठाते हुए इन दलाल तत्वों ने प्रेमचंद, निराला की प्रगतिशील साहित्य परंपरा को नकारना शुरू कर दिया, जनवादी मूल्यों का जमकर विरोध किया । "क्योंकि बहुसंख्यक जनता इस समय अनेक विभ्रमों का सहारा लिए बैठी थी और शोषण के विरुद्ध अब तक कोई सशक्त जनांदोलन हिन्दी क्षेत्र में नहीं उभर सका था इसलिए स्वस्थ जनवादी साहित्य के विरुद्ध होने वाले ये योजनाबद्ध प्रहार काफी कामयाब रहे । §4§

---

§1§ सामाजिक कहानी का यथार्थ - सुभाष पंत, समझ - 4
§2§ जगमंदिर तायल, ओर 71 पृ॰ 47
§3§ ओमप्रकाश ग्रेवाल, कंक 81 पृ॰ 110
4. वही

कई विचारशील युवाकवि विकल्पहीन विद्रोह के और सर्वनिषेधवाद के शिकार नहीं भी थे किन्तु वे अपनी मात्रा में कम होने की वजह से गुणात्मक भूमिका अदा नहीं कर सके । फिर भी अपनी सीमित क्षमता में वे संघर्षरत थे । कविता में जो विद्रोह अकवियों में शुरू हुआ, वह राजनीति में सही विकल्प के अभाव में जन्मा था । किन्तु सन् 66-67 के आसपास स्थिति में एक गुणात्मक परिवर्तन आया । देश की समस्याएं अब बहुत गंभीर हो चुकी थी, मौजूदा अवस्था में उनका समाधान नहीं हो सकता था । लोगों में बेचैनी और रोष की भावना बढ़ने लगी । पर जैसे - जैसे लोगों ने आवाज उठानी शुरू की, शासक वर्गों की दमन-नीति भी तीव्र होने लगी । शासक वर्ग तब तक ही विरोधों को प्रोत्साहन देता है जब तक वे अपना रोमान छोड़कर सही विद्रोह के पक्ष में नहीं आ जाता । "योरप और अमरीका में भी कुछ युवाओं की बीटनिक हिप्पी प्रवृत्तियों को शासक वर्ग ने कम प्रचारित-प्रसारित नहीं किया था, लेकिन जब वे सही विद्रोह का पक्ष ग्रहण करने लगीं तो वहीं शासक वर्ग उन्हें दमन और यंत्रणा का शिकार बनाने लगा । प्रारंभ में "जिन्सबर्ग" का समर्थन और वियतनाम के प्रश्न पर अमरीकी साम्राज्यवाद की निंदा करने के बाद में उसका विरोध इसी सत्य का प्रमाण है ।§1§

जनवादी आंदोलनों के तेज होने के साथ, लोगों के नागरिक अधिकारों को जब संकुचित किया जाने लगा और तानाशाही प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी तो अकविता के नकारवाद का धुंध छंटने लगा और सही विकल्प की खोज हुई ।

मैं रोज चाहता हूँ बेदर्दी से
इस गंदी दिमाग पूँजी की
एक एक तह को उधेड़ कर जला देना,
रोज चाहता हूँ, जल्दी से होना
वह आखिरी लड़ाई,

§राशि प्रकाश§

---

§1§ सत्य साची, प्रारंभ - 73 पृ॰ 16

अकविता के औचित्य तथा उनके द्वारा उत्पन्न साहित्यिक प्रदूषण पर चिंता व्यक्त की जाने लगी -

"आज की कविता के लंबी होने, कहानी के अमूर्त होने तथा उपन्यास के अंतहीन होने के पीछे बहुत दूर तक लेखक का यह वर्तमान मन: स्थिति कारण रूप में विद्यमान है : विषम परिवार और समाज के प्रतिकूल दबावों के बीच जीता हुआ आज का व्यक्ति यौन और आर्थिक विफलताओं से ग्रस्त होकर मूल्यों और संबंधों की निरर्थकता का अनुभव करने लगता है और वह अपनी रचनाओं में अपने अनुभवों और धारणाओं के माध्यम से तमाम असंबद्ध परस्पर उलझे हुए, खंडित अर्थ-हीन और असमाप्त हद तक यथार्थ को अभिव्यक्ति देता है ।[1]

साहित्य क्षेत्र में बड़े पैमाने पर होने वाले इस प्रदूषण का परिणाम निश्चित रूप से सामाजिक अभिरुचि पर पड़ता है । फल यह होता है कि जनसाधारण की सस्ती अभिरुचि और घटिया दर्जे का साहित्य इन दोनों के जुड़ जाने से एक दुष्चक्र पैदा होता है इस दायरे को तोड़ना पड़ेगा । संघर्ष दो तरफा है एक ओर प्रदूषण के संबंध में जनसाधारण को सजग एवं सचेत करना है तो दूसरी ओर मनुष्यों की अभिरुचि को विकसित करने के लिए हमारी पहुँच के सभी माध्यमों को अवलंब करना है ।[2]

आत्मनिर्वासित, अकेलेपन, ऊब, संत्रास, एब्सर्डिटी की बातें बहुत कर ली लेकिन अब इसके दुष्प्रभावों के आकलन का समय आ गया है । यह दायित्व नयी पीढ़ी के कवि, लेखकों, कहानीकारों और साहित्यकारों के कंधों पर है । [जो अभी भी भीड़ को लाशें समझकर दुनिया को वेस्टलैंड समझते हैं वे एक यूटोपिया में रह रहे हैं] प्रेमचंद, निराला, मुक्तिबोध और नागार्जुन की परंपरा को विकसित करने के लिए मानवतावादी साहित्यकारों को एकजुट हो लड़ना होगा ।[3]

---

[1] आवेश 72 पृ॰ 280
[2] चंद्रकांत पाटील, आवेश 72 पृ॰ 277
[3] चंचल चौहान, आवेश 72 पृ॰ 279

सन् 66-67 के लगभग राजनीतिक परिस्थितियां बदलने लगीं और संशोधनवादी और नई प्रगतिशील विचारधाराओं के ध्रुवीकरण से दृष्टि अधिक स्पष्ट हुई । [1] कुछ समय पूर्व तक साहित्यकी सभी विधाओं में पूंजीवादी और सामंती मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयत्न चल रहा था, पश्चिमी साहित्य के विचारों का घटिया रूपांतर हो रहा था वह अपने परिवेश से अपरिचय और सायास अलगाव के कारण भी हुआ । किन्तु सन् 70 के बाद का लेखन अपने परिवेश से संपृक्त ही नहीं उससे अपने को एकाकार भी करता है । [2] साहित्य में राजनीति की घुसपैठ एक अनिवार्य शर्त हो जाती है । और साहित्यकार की प्रतिबद्धता संबंधी प्रश्न उठते हैं -

"बशर्ते तय करो / किस ओर हो तुम"

(मुक्तिबोध)

यदि लेखक किसी दर्शन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता नहीं रखता है तो उसका साहित्य दृष्टिहीन होगा । फिर आम आदमी के लिए जो लेखक लड़ाई लड़ रहे हैं - उन्हें तो एक सुलझी हुई प्रखर दृष्टि-दिशा रखनी है, वह है - मार्क्सवाद । [3]

परिदृश्य पर फिर एक बार जनवादी साहित्य ने अपनी अनिवार्य सार्थकता पुनः सिद्ध कर दी है । जनवादी कविता सुदीर्घ परंपरा और इतिहास के साथ समृद्धतर होते हुए पुनः पटल पर है तथा अपने होने की अनिवार्य संगति को सिद्ध कर रही है । राजकमल चौधरी तथा धूमिल कालांतर में सौमित्र मोहन, कुमार विकल, गंगाप्रसाद विमल, चंद्रकांत देवताले, मुद्राराक्षस भी मुक्ति की छटपटाहट के साथ जनवादी रचनाकारों से जुड़ने की उत्सुकता लिए दिखाई पड़ते हैं । [4]

फलतः अकवितावादी आंदोलनों को पल्लवित करने वाली पत्रकारिता कालगर्त में समा गई या मरणासन्न हो गई तथा जनवादी लघुपत्रिकाएं अपनी जिम्मेदारी निभाने के लिए अस्तित्व में आईं । जनवादी साहित्य रचना की हिमायत हुई,

---

(1) डा॰ कुंवरपाल सिंह, परिपत्र 77
(2) डा॰ चंद्रेश्वर कर्ण, समर 4 पृ॰ 17
(3) यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" कालबोध-79-80, संपादकीय
(4) निर्मल शर्मा, कंक 81 पृ॰ 20

साहित्य का राजनीति से संबंध जुड़ा -

पिछले दिनों योजनाबद्ध ढंग से हिन्दी सृजन क्षेत्र में रचनाकार के निजी संसार, भाषा तथा इन मुहावरों को लेकर इस प्रकार के बहस मुबाहिसे हुए कि जिंदगी के बुनियादी सवालों को ऊपर में ठेल दिया गया । कविता "अपने जहन्नुम में" या सिर्फ "साथ की छटपटाहट" में सिमटकर गूंगों तथा बहरों का मूक अभिनय बनती गई और एक झूठ वाचलता, कपटपूर्ण भाषा और विडंबना युक्त मुद्राओं को मुहावरा कहा गया । यही नहीं बल्कि बड़ी सूक्ष्मता से रचनाकार को उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि से अलग तराशकर देखना भी उसी योजना की एक साजिश थी । यह आकास्मिक नहीं है कि कहानी का निरा तिलस्मीकरण कर उसे प्रायः समाप्त कर दिया गया । यह कविता ही है जो जीवंत विधा के रूप में खूनी दांतों के मध्य कहीं जिंदा है और राजनीति में हस्तक्षेप कर अपना अलग व्यक्तित्व रच रही है । (1)

आज के कवियों ने जनता के पक्ष का समर्थन कर वर्तमान राजनीति को प्रभावित किया है और यहां कविता बराबर सामाजिक हस्तक्षेप की ओर बढ़ी है । साहित्य की स्वायत्तता तथा लेखक व लेखन का राजनीति से विलगाव - जैसी मांगों का डटकर विरोध किया गया । "50 से 60 के दशक में फिर एक बार साहित्य और राजनीति का संबंध जांचने का परिस्थिति निर्मित हो गई थी । देश में चुनी हुई सरकार बन गई थी और लेखकों, बुद्धिजीवियों से अपेक्षा की जा रही थी कि वे यदि सरकार के लिए नहीं भी लिखें लेकिन कम से कम विरोध भी न करें इसी बीच 60 में नामवर सिंह का लेख "साहित्य और राजनीति" वियतनाम के संदर्भ में छपा । चारों तरफ जैसे शोर फूट पड़ा, मानो कोई अनहोनी गुजर गई हो, चारों ओर से उत्तर दिए जाने लगे । (2) साहित्य में जब भी प्रतिबद्धता की बात उठाई गई उसे शक-संशय की दृष्टि से देखा गया,

---

(1) और 71 संपादकीय
(2) निर्मल शर्मा, अंक 81 पृ॰ 18

और साहित्य को नारा बन जाने के खतरे की गंभीर भविष्यवाणियां दी गईं । §1§

"साहित्येतर" हो जाने का भय वास्तव में अपने छद्म के पकड़ लिए जाने का भय है । व्यवस्था के लिए काम करते हुए व्यवस्था का मौखिक और आधा-रहीन विरोध करने वाले लेखक ही साहित्य को कुछ ऐसी चीज मानते हैं कि यदि उसे उसके शीशमहल से निकाल कर सड़क पर ले आया गया तो वह दूषित हो जाएगा । §2§ साहित्य की तरह राजनीति भी मानव समाज की एक जीवंत विधा है । राजनीति हमारे अस्तित्व से लेकर पारिवारिक जीवन, अर्थव्यवस्था सांस्कृतिक-विकास, मानवीय मूल्यों और स्वतंत्र अभिव्यक्ति तक सभी को निर्णायक रूप से प्रभावित करती है । §3§ साहित्य को राजनीति से अलग रहना चाहिए या लेखक का सक्रिय राजनीति में शामिल होना "साहित्येतर" कर्म मानना "शारीरिक श्रम और बौद्धिकश्रम में नकली अंतर पैदा करना - पूंजीवादी व्यवस्था की देन है, इसे शाश्वत और सत्य मानने की भूल उस व्यवस्था के समर्थक ही कर सकते हैं"। §4§ प्रगतिशील-प्रतिबद्ध साहित्यकार अपने समाज एवं उसके क्रांतिकारी वर्ग से सम्बद्ध होता है । "सामाजिक परिवर्तन में साहित्यकार की निर्णायक न होने पर भी एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि वह कला के माध्यम से जन-मानस को झकझोर कर प्रतिगामी शक्तियों के विरुद्ध प्रगतिशील शक्तियों को बल प्रदान करता है । §5§ प्रतिबद्ध साहित्यकार ही इस भूमिका का उचित रूप से निर्वाह करता है ।" प्रतिबद्ध लेखक ही व्यवस्था का वास्तविक विरोध कर सकता है और प्रतिबद्धता वास्तव में जीवन से शुरू होकर लेखन में उतरती है । प्रतिबद्ध होने का अर्थ है क्रांतिकारी दर्शन को आत्मसात करके उसके अनुसार अपने आपको ढालना और यह बदलाव उसके लेखन में भी प्रकट होता है, ऐसा ही लेखन

---

§1§ सुभाष पंत, समझ - 4 पृ॰ 12
§2§ रमेश उपाध्याय, उत्तरार्द्ध 4 - 13 पृ॰ 17
§3§ महेन्द्र नेह, उत्तरार्द्ध 4 पृ॰ 26
§4§ रमेश उपाध्याय, उत्तरार्द्ध - 4
§5§ सत्यसाची, उत्तरार्द्ध -4 पृ॰ 23

"प्रतिबद्ध साहित्य" होता है । केवल लेखन में व्यवस्था का विरोध और जीवन में व्यवस्था का स्वीकार-एक तरह का कैमाफ्लाज है, जो व्यवस्था को असली प्रहार से बचाता है ।§1§

इस प्रकार के विरोध को प्रोत्साहन देकर शासक वर्ग एक ओर स्वयं को जनतांत्रिक सिद्ध करता है, दूसरी ओर इसके द्वारा वास्तविक प्रतिबद्ध साहित्य की परंपरा को कमजोर बनाता है ।

शासक वर्ग, कभी अभिव्यक्ति का स्वाधीनता पर रोक लगाकर तो कभी अपने द्वारा नियंत्रित प्रचारतंत्र के द्वारा जनसाहित्य और जनांदोलनों को कमजोर करने का प्रयास करता है ।

प्रगतिविरोधी शोषक वर्ग को प्रचारतंत्र की दृष्टि से पराजित नहीं किया जा सकता है "क्योंकि उसकेपास करोड़ों की संख्या में प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्र, उपन्यास, पत्रिकाएं हैं, हर कान तक पहुंचने वाला रेडियो और हर आंख को अच्छा लगने वाली सिनेमा मौजूद है, जिसके द्वारा वह लगातार अपने विचारों का प्रचार करके शोषण की व्यवस्था के पक्ष में जनमत तैयार करता रहता है ।§2§ नौकरशाही तथा सरकारें कोशिश करती हैं कि प्रकट अथवा प्रच्छन्न रूप से, प्रेस और संस्कृति, दोनों ही उनके अनुकूल रहें । इसलिए प्रेस तथा उन कलाओं की बाबत नियंत्रणकारी एक्ट बनाए जाते हैं जो आनुष्ठानिक तथा सामूहिक हैं । इसलिए रेडियो, टेलीविजन, प्रेस जैसे जनप्रेषण माध्यमों पर सरकार अथवा इजारेदारों का कब्जा होता है । और इसी वजह से ये दोनों "ज्ञान" और "सूचना" पर भी अधिकार रखते हैं अर्थात् सूचना संचारण की सभी राष्ट्रीय ध्वनियों के प्रवाह को ये अपने अनुसार नियोजित करते हैं । यूं मनुष्यों के मस्तिष्कों को छिपाकर नियंत्रित किया जाता है ताकि वे बाहरी दशाओं और आंतरिक चेतना

---

§1§ रमेश उपाध्याय, उत्तरार्द्ध 4
§2§ सव्यसाची, भंगिमा - 25 / 1975, पृ॰ 38

के समतुल्य को वैचारिक मशालों से ज्योतिर्मान न कर सकें । इस तरह ये स्वतंत्रताएं भी वास्तव में मिथक बन गयी है ।§1§

दरअसल प्रेस की स्वतंत्रता की बुनियादी और पहली शर्त यह है कि इसे व्यवसाय बनने से रोका जाए । प्रेस, लेखक और पत्रकार की गुलामी की जड़ में यही व्यवसाय है, जो इन्हें व्यवसायियों के हाथ की कठपुतली बना देता है । व्यवसायी, लेखन और पत्रकारिता के उच्चतम उद्देश्यों और लोकहित के उद्देश्यों को भूलकर उन्हें अपने हित में चलाते हैं, जनता के हित में नहीं । वे लेखक-पत्रकार को विवश करते हैं कि वे अपने लेखन और पत्रकारिता को अपने जीवन-निर्वाह का साधन बना लें । जो लेखक या पत्रकार लेखन और पत्रकारिता को अपने जीवन का साधन बना लेते हैं वे अपनी स्वतंत्रता खो देते हैं ।§2§ लेखन या अभिव्यक्ति की स्वाधीनता का प्रश्न महत्वपूर्ण है पर इससे भी अधिक महत्वपूर्ण ये सवाल है कि इस स्वतंत्रता का उपयोग किसके लिए और किस उद्देश्य से किया जाता है ।

भारत ऐसे देश में यह देखना और भी जरूरी हो जाता है । जहां आर्थिक आजादी और सामाजिक न्याय पाने के लिए बहुसंख्यक भारतीय जनता का संघर्ष समाज के उस वर्ग से है जिसमें मुट्ठीभर लोग हैं पर वही समाज की अर्थव्यवस्था को नियंत्रित कर रहे हैं तथा व्यापक स्तर पर शोषण का चक्र चला रहे हैं । इस तरह अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए हर स्तर पर इनका प्रभाव अभिव्यक्ति के माध्यमों यथा प्रेस रेडियो, टीवी आदि पर तो है ही और वे इसका उपयोग खुलकर अपने वर्ग के हित में करना चाहते हैं तथा करते हैं । जिसका अर्थ होता है शोषित-पीड़ित बहुसंख्यक जनता के शोषण और उसकी पीड़ाओं का विस्तार तथा उसकी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं में और भी गिरावट । इसके साथ ही अप-संस्कृति को बढ़ावा ।§3§ इस मिश्रित अर्थव्यवस्था में बड़े से बड़े मूल्य का व्या-

---

§1§ रमेश कुंतल मेघ, प्रारंभ - 73 पृ॰ 13
§2§ भैरव प्रसाद गुप्त, प्रारंभ 73 संपादकीय
§3§ समझ - 4, संपादकीय

पारीकरण करके उसको अवमूल्यित कर दिया जाता है। व्यक्ति चाहे लेखक हो या बौद्धिक वस्तु बनकर बिकाऊ मात्र बन जाता है। समाज बाजार में बदल जाता है। साहित्य का भी व्यापार होने लगता है। जो ज्यादा बिके वह बेचने वाले को लाभ का सौदा नजर आता है और पाठक उपभोक्ता और मनो-रंजन का खरीद बन सस्ते आनंद की तलाश करता है। इन सब की स्वाधीनता का अर्थ व्यापारिक स्वाधीनता है। यानी अभिव्यक्ति कितनी भी घटिया या सतही क्यों न हो उसको फैलाने या बेचने की स्वाधीनता को अभिव्यक्ति की स्वाधीनता माना जाता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति की स्वाधीनता से आज की व्यावसायिक पत्रकारिता का लेखक मूल्यहीन हो गया है।[1]

व्यावसायिक घरानों की पत्रिका पूंजीवादी मनोवृत्ति को ही बढ़ावा दे रही है। जिनमें यथार्थ-सामाजिक संदर्भों से कटी कविताएं कहानियां, रंगीन उत्तेजक चित्रों की भरमार तथा पुराने दकियानूसी रूढ़िवादी विचार, नए कलेवर में प्रकाशित होते हैं। बहुसंख्यक शोषित पीड़ित भारतीय जनता के संघर्ष उसकी दिशा तथा उनके विभिन्न आयामों का परिचय नहीं मिलेगा। इतना ही नहीं ये पत्रिकाएं सामाजिक विकास की वैज्ञानिक प्रक्रिया का समर्थन करने वाले तथा उसके लिए सचेष्ट विचारधारा, व्यक्ति समूह तथा पत्र-पत्रिकाओं का विरोध करना भी अपना पुनीत कर्तव्य मानती हैं। उनके विरुद्ध गंदे आधारहीन तथा झूठे प्रचार को बढ़ावा देना इनके आचार संहिता में शामिल है।[2]

इस बहुत ही कठिन और निराशाजनक परिस्थिति से उबरने का प्रयास लघुपत्रिकाओं में दिखाई पड़ता है। "लघु पत्रिका का आंदोलन, विशेष रूप से हमारे देश में प्रसार साधनों पर धनिक वर्ग के एकाधिकार के कारण शुरु हुआ। आधुनिक साज-सज्जा से संपन्न बड़े-बड़े प्रेसों द्वारा पूंजीपतियों ने भारी संख्या में रंगीन पत्रिकाओं का प्रकाशन करके उन्हें देश के कोने-कोने में कम मूल्य पर

---

[1] गोपाल कृष्ण कौल, संचेतना 77 पृ॰ 140
[2] समझ 4, संपादकीय

पहुंचाया । निश्चय ही भारत जैसे विस्तृत देश में नयी रचनाशील प्रतिभाओं को इन माध्यमों तक पहुंचाने का अवसर नहीं मिल रहा था, क्योंकि ये नए रचनाकार देश की वास्तविक स्थितियों को अपनी रचनाओं में व्यक्त कर रहे थे । भूख, बेकारी, गरीबी और शोषण का रचनात्मक प्रास्म सीधे-सीधे संपत्तिवानों के ऊपर चोट करता है ।§1§

नए रचनाकारों की रचनात्मक ऊर्जा को अभिव्यक्ति देने के कारण वर्तमान व्यवस्था का विरोध इन लघुपत्रिकाओं का प्रमुख स्वर बन गया ।

"यूं व्यवस्था की आलोचना को आज की व्यवस्था बुरा नहीं समझती है । किन्तु यदि आप अपनी आलोचना में जिंदगी से उठाकर ठोस उदाहरण देंगे और कुछ खासचीजों के नाम लेने लगेंगे तो आपको अपनी रचना का प्रकाशन खुद करना पड़ेगा । व्यवस्था को रोटी, मकान, शिक्षा का अभाव तथा थोड़ा वेतन आदि छोटी बातें पसंद नहीं हैं ।§2§ व्यवस्था विरोध की बात तो आजकल बड़े जोर-शोर से कही जा रही है । लेकिन यह विरोध केवल लेखन के स्तर पर होना चाहिए और व्यवस्था के अंदर रहते हुए ही किया जाना चाहिए ये मांग भी की जाती है ।§3§ व्यवस्था और इसके समर्थकों का सारा काम जनमत को अपने पक्ष और हित में बनाए रखना, पाठकों की चेतना को कुंठित करने तथा उनकी वास्तविक समस्याओं को उनसे छिपाए रखने, झूठे और बेहूदा हल प्रस्तुत करने, उनके सांस्कृतिक स्तर को गिराने उन्हें झूठे वातावरण में फंसाए रखने, साहित्य कला को, लेखन और पत्रकारिता को भ्रष्ट करने के लिए होता है ।§4§ वे कभी शिल्प में प्रयोग के नाम पर लेखन को दिशाहीन बनाते हैं, कभी आत्मसाक्षात्कार द्वारा लेखकों को पलायनवादी बनाने का प्रयास करते हैं तो

---

§1§ मार्कण्डेय, नकारा "जनवरी"80 पृ॰ 5
§2§ जगमुंदिर तायल, और 71 पृ॰ 47
§3§ रमेश उपाध्याय, उत्तरार्द्ध 4 पृ॰ 14
§4§ भैरव प्रसाद गुप्त, प्रारंभ 73

तो कभी राजनीति से तटस्थता का उद्घोष करके युवा हस्ताक्षरों को जीवन से दूर ले जाने की व्यूह रचना करने लगते हैं ।§1§

आजकी व्यवस्था बड़ी चतुर क्रूर है । वह अपने विरोधियों को जेल नहीं भेजती है, उनपर पाबंदी नहीं लगाती है । आपको अपनी बात कहने की आजादी है, मगर व्यवस्था को भी आजादी है कि वह अपनी बुलंद आवाज और विपुल साधनों से आपकी आवाज को पीछे धकेल दे और उसे किसी को सुनने नहीं दे । युवा लेखन के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यह चतुर व्यवस्था ही है । यह व्यवस्था कभी सामने आकर युवालेखन की रचनाशीलता को नहीं रोकती है । इसका मुख्य शस्त्र है - विरोध की नकली मुद्रा और उससे उत्पन्न भ्रम ।§2§ इस तरह सत्ताधारी वर्ग की विचारधारा सारे समाज की विचारधारा के रूप में हावी रहती है, जो मिथ्याचेतना होती है जो सही सामाजिक चेतना को ढांकती रहती है ।§3§ अपने सभी पूर्ववर्तियों से अधिक चालबाज, धूर्त, मक्कार, प्रपंची, छद्मवेशी और मायावी आज की सत्ता व्यवस्था है । इसके व्यूह, षड्-यंत्र, फरेब और जाल बड़े बारीक और अदृश्य है । यह व्यवस्था अपने पूर्ववर्तियों की तरह मात्र परंपरा को नहीं ढो रही, इसने अंतर्राष्ट्रीय गिरोह और तंत्रों से भी कुछ नए-नए गुर सीखे हैं । आजकी इस "प्रतिभा संपन्न" व्यवस्था ने अमरीकी साम्राज्यवादी प्रचारतंत्र से महान शिक्षाएं ली है, जो एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका की मेहनतकश जनता का तीव्र शोषण करने और बहादुर वियत-नामी आवाम पर हर संभव जुल्म ढाने के बावजूद विश्व प्रजातंत्र का रक्षक बनता है । इस व्यवस्था ने हिटलर के प्रचारमंत्री "गोयबेल्स" को अपना गुरु माना है और लफ्फाजी जो सबसे निकृष्टकोटि की कला है उसे सबसे महान कला माना । यही कारण है कि अहर्निश समाज के रक्त को चूसने वाली जोकें आज स्वयं को प्रगतिशील कहती हैं ।§4§

---

§1§ सत्यसांची, प्रारंभ 73 पृ॰ 16
§2§ जगमुंदिरतायल, और 71 पृ॰ 47
§3§ रमेश कुंतल मेघ, सामयिक - 2
§4§ महेन्द्र नेह, उत्तरार्द्ध 4, पृ॰ 3-4

एक ओर आज इंसानी ताकत को खत्म करने के लिए काले कानूनों की मदद ली जा रही है वहीं दूसरी तरफ छिटलराना "स्टेटजी" का इस्तेमाल करते हुए हमारे सिपाहियों का सा लिबास पहनकर दुश्मनों ने अपने सिपाहियों से ऐसी वारदातें करवानी शुरु कर दी है जिससे हमारी तस्वीर को बिगाड़ सकें ।§1§

हिन्दी साहित्य में प्रगतिशीलता के नाम पर एक पाखंड यदि सबकुछ के अस्वीकार का चल रहा है तो दूसरा नैराश्य जनक आत्मघात का । ये दोनों ही प्रवृत्तियां प्रगतिशील न होकर शासक वर्ग की सहयोगी होने के कारण प्रतिक्रियावादी है । एक प्रगतिशीलता यह भी चल रही है कि हम विदेशी घटनाओं में तो प्रगतिशील हो जाते हैं और देश में होने वाली दुर्घटनाओं पर वीतरागी मुद्रा धारण किए रहते हैं । मसलन चेकोस्लोवाकिया में जान प्लाय के आत्मदाह पर तो बच्चन और श्रीकांत वर्मा बेहद दुखी नजर आते हैं लेकिन तंजोर में 44 हरिजन मजदूरों को जमींदारों द्वारा जिंदा जला दिए जाने या बिहार में 35 संथालों की अमानुषिक हत्या होने पर वे एकदम से अपनी नजर खो बैठते हैं हैं ।§2§

आज का लेखक स्पष्ट रूप से दो शिविरों में बँटा हुआ है । एक शिविर वैसे लेखकों का है जो व्यवस्था के खिलाफ अपने लेखन को मांज रहे हैं और समय आने पर उस लड़ाई में भी शामिल हो सकते हैं, जिसकी आवश्यकता वे गहराई से महसूस करते हैं । दूसरे, वैसे लेखक जो व्यवस्था के साथ होकर तमाम विरोधी लेखकों और कवियों पर आघात करते हैं ।§3§

शोषक वर्ग स्वतंत्रता का सबसे बड़ा दुश्मन है, क्योंकि वह राज्यतंत्र के बुर्ज्वा प्रजातंत्र के माडल का इस्तेमाल सच्ची स्वतंत्रता को कुचलने के लिए ही

---

§1§ अब्दुलगनी बकलम; और 71 पृ॰ 53
§2§ सत्यसाची, प्रारंभ 73 पृ॰ 19
§3§ राम निहाल गुंजन, और 71 पृ॰ 37

करता है । बुर्ज्वा शासक वर्ग प्रशासन, पुलिस और फौज के जरिए किसी भी संगठित एवं क्रांतिकारी स्वतंत्रता की लहर को खत्म करने की कोशिश करता है ।§1§ यथास्थिति का विरोध करने पर निश्चित रूप से निराला, मुक्तिबोध की तरह हमें उपेक्षा ही नहीं, यंत्रणा और दमन का भी सामना करना होगा ।§2§

सचमुच ये बात समझ में नहीं आती है कि अपनी जिन रचनाओं के कारण गोर्की रूस में और प्रेमचंद हिन्दुस्तान में क्रांतिकारी प्रगतिशील लेखक माने गए लगभग उसी तरह की प्रगतिशील रचनादृष्टि वाले "युवालेखक" आज आतंकित औ संत्रस्त किए जाते है ।§3§

पिछले §तीन§ दशकों की युवा-पीढ़ी भूख, गरीबी और बेरोजगारी की भूल भुलैया में फंसी दिनानुदिन अपने लक्ष्य से कटती चली जा रही है । विरोधी शक्तियां सुरसा की तरह विस्तार पाती चली जा रही है । टूटी तलवार की मूठ थाम आज की युवा-पीढ़ी लड़ाई के मैदान में आ डटी है ।§4§

इसी नेक उद्देश्य से लघु पत्रिकाओं का भी एक नया दौर शुरू हुआ । आजादी की लड़ाई के दौर की तरह कवि, कलाकारों, पत्रकारों ने शोषण - सत्ता के विरुद्ध आगे आये । नगरों, कस्बों, गांवों की प्रतिभाएं इन पत्रिकाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति पाने लगीं । इन्होंने मिलकर धन्ना सेठों की रंगीन पत्रिकाओं का मुकाबला कर उनसे कहीं ज्यादा महत्व प्राप्त कर लिया ।§5§ इन पत्रिकाओं ने साहित्य की व्यावसायिकता और अव्यावसायिकता को रेखांकित किया ।

---

§1§ रमेश कुंतल मेघ, प्रारंभ 73 पृ॰ 9
§2§ सत्यसाची प्रारंभ 73 पृ॰ 17
§3§ रामनिहाल गुंजन - और 71 पृ॰ 39
§4§ सतीश भास्कर, नक्तारा, जन॰ 80 पृ॰ 4
§5§ चंचल चौहान, कंक 81 पृ॰ 204

छोटी पत्रिका के प्रकाशन के पीछे कुछ ठोस रचनात्मक दबाव, सही लेखन को प्रतिष्ठापित करने का निश्चय तथा गलत चीजों के सच्चे प्रतिकार का विचार सक्रिय होता है। कुछ जिम्मेदारी छोटी पत्रिकाओं ने दारुण और तोड़ने वाली परिस्थितियों के बीच भी अपने कर्तव्य को चरितार्थ करने में कोई कमी नहीं आने दी।[1] छोटी पत्रिकाएं अस्तित्व संकट को झेलते हुए साहित्य और चिंतन के क्षेत्र में क्रांतियाँ करती है।[2]

लघु पत्रिकाओं के सामने अनेक समस्याएं हैं। जिनमें सबसे बड़ी समस्या है आर्थिक, दूसरी बड़ी समस्या है अच्छी सामग्री का अभाव, जिसके कारण इनके सीमित साधनों का काफी अपव्यय होता है और एक अंक के बाद दूसरा अंक निकालने में प्राय: अधिक समय लग जाता है।[3]

इधर साहित्यिक या छोटी पत्रिकाओं के प्रकाशन की संख्या काफी बढ़ी है। मगर प्रकाशनों की संख्या बढ़ना ही भर काफी नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि छोटी पत्रिकाओं के नियमित प्रकाशन की व्यवस्था भी होती रहनी चाहिए।[4] जो काम कोई लघु पत्रिका अकेले नहीं कर पाती है वह सभी लघु पत्रिकाएं मिलकर कर सकती हैं। पत्रिकाओं के एक जुट होने का लाभ तो है ही ऐसा करना अनिवार्य भी हो गया है। सीमित साधनों के कारण कोई पत्रिका अपने प्रभाव क्षेत्र के बाहर नहीं जा पाती है और पर्याप्त साधन नहीं जुटा पाती है। इसलिए आर्थिक और लेखकीय सहयोग के अभाव में पत्रिकाएं कुछ महीने या वर्ष चलकर लुप्त हो जाती है। यदि दस पत्रिकाएं अपनी मिली जुली शक्ति के आधार पर कागज और विज्ञापन जुटाए तो आसानी हो सकती है। एक अच्छी रचना एक साथ कई पत्रिकाओं में छपकर भी अलग-अलग

---

[1] प्रसन्न ओझा, 72 पृ॰ 319-322
[2] संपादकीय, सिलसिला - 3 (सित॰, नवं॰ 76)
[3] रमेश उपाध्याय, जनवादी साहित्य के दस वर्ष, पृ॰ 35
[4] संपादकीय, उत्कर्ष जून 67

क्षेत्रों के पाठकों तक पहुंच सकती है । यही नहीं हर पत्रिका अपने प्रभाव क्षेत्र में कुछ ऐसे समर्थ पाठक भी ढूंढ सकती है जो दूसरे क्षेत्रों की पत्रिकाओं को भी खरीदें ।§1§ या फिर यदि संपादकों का कोई एक वृहत्तर संगठन बने जो आपसी सहयोग के आधार पर इन पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री से चुनी हुई रचनाओं का कोई एक अर्द्धवार्षिक या वार्षिक संकलन प्रकाशित करता रहे तो निश्चय ही यह साहित्य के विकास में ऐ अभूतपूर्व योगदान होगा ।

## ॥ साहित्यिक योगदान

लघु पत्रिकाओं के माध्यम से विभिन्न कविता / कहानी आंदोलन हिन्दी साहित्य में विकसित हुए । काव्यांदोलनों की असंख्य पत्रिकाएं थी हीं कहानी आंदोलनों के समर्थन में भी पत्रिकाएं प्रकाशित हुए । सन् 1960 तक "कहानी" पत्रिका के माध्यम से तथा 1964 तक "नई कहानियां" पत्रिका के माध्यम से "नयी कहानी" का आंदोलन चला । इस आंदोलन के टूटने के बाद फिर तो कहानी के भी, अनगिनत आंदोलन तथा उनकी लघुपत्रिकाओं का सूत्रपात हुआ - साठोत्तरी पीढ़ी, संवेदन, नंगी, भूखी, श्मशानी आदि लेकिन इनमें से कोई भी आंदोलन न कविता और न ही कहानी में चल सका "कमलेश्वर ने समानांतर" कहानी आंदोलन "सारिका" के माध्यम से चलाने की कोशिश की किन्तु वे भी सफल न हो सके । आठवें दशक तक आते-आते जनवादी साहित्य आंदोलन प्रबल होने लगा तथा वामपंथी जनवादी लघु पत्रिकाएं - सामयिक, उत्तरार्ध, वाम, कथा, पहल, क्यों और, प्रचेता आदि भी उसी समय अपनी संघर्षी भूमिका के साथ सामने आई ।

आज की अधिकांश लघु पत्रिकाओं में वाम जनवादी प्रतिबद्ध कविताओं की छवि देखी जा सकती है । सैकड़ों युवा कवि अपनी अभिव्यक्ति को कविता की

---

§1§ संपादकीय, भंगिमा 75

शक्ल दे रहे हैं । धूमिल जैसे कवि लघु पत्रिकाओं की ही देन है । इन पत्रिकाओं में वाम जनवादी प्रतिबद्ध कविता पर समीक्षात्मक और आत्म समीक्षात्मक विचार विमर्श हो रहा है । उद्भ्रांत द्वारा संपादित "युवा" का (मार्च 77 में) "समकालीन कविता" विशेषांक निकला । "अनाहूत" (संपादक - ललित शुक्ल) का 8वां अंक - वाम कविता विशेषांक 1978 में प्रकाशित हुआ । बलवीर सिंह के संपादन में "प्रतिबद्ध कविता" पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ ।

"कथा" के दूसरे (जून 1970) तथा तीसरे (जुलाई 71) अंकों में चली नवलेखन संबंधी धारावाहिक बहस इस प्रक्रिया को समझने में मददगार हो सकती है । एक दिशाहीन, मूल्यहीन विद्रोही मुद्रा की सीमाओं से उबरकर व्यवस्था विरोध को सही दिशा देने की नयी प्रवृत्ति का उभार है । एक सामाजिक आदर्श के तौर पर "समाजवाद" की स्थापना इस बहस का मुख्य स्वर है । इस सामाजिक आदर्श की दिशा से ही सामाजिक सार्थकता, रचनात्मक दायित्व आदि तमाम बुनियादी सवालों को उठाया गया । और शाश्वत विरोध तथा शाश्वत नकार के अनैतिहासिक दर्शनों की वर्गीय सार-वस्तु को बेनकाब किया गया । "कथा" के दूसरे अंक में ही "भारत में समाजवाद : दिशा और दृष्टि" शीर्षक से एक राजनीतिक संवाद भी था जिसमें तमाम वामपंथी पार्टियों के नेताओं ने इस आदर्श और उसकी प्राप्ति की दिशा की अपनी व्याख्या प्रस्तुत की ।(1)

कई अन्य पत्रिकाओं में वामपंथी जनवादी कविता तथा साहित्य पर लेख प्रकाशित कर इस बहस को आगे बढ़ाया । समकालीन कविता में वाम (युग परिबोध, मई 76), समकालीन हिन्दी कविता में वाम (युग परिबोध जन॰ मई॰ 78) समकालीन लेखन में आबद्धता (प्रतिमान नव॰ 78) जनवाद और जनवादी लेखन (कलम 79) जनवादी साहित्य : कुछ जरूरी मुद्दे (बहस - 2 अग॰ 79), वाम

---

(1) उत्तरार्द्ध 20 (अक्टू॰ 82) पृ॰ 84

कविता पर लेख, वाम काव्य चेतना (समकालीन), जनवादी हिन्दी कविता पर विशेष सामग्री (संभावना, फर॰-अप्रैल 79) आदि । लगभग इसी समय पश्यंती का जुलाई-दिसं॰ 78 "आज की कविता अंक तथा पहल - 13 (जन॰ 79)॰ तथा युवा (1977) के "समकालीन कविताएं" प्रकाशित हुए ।

पुराने प्रगतिशील काव्य की अपेक्षा जनवादी कविता में काव्य सौन्दर्य संबंधी परिवर्तन भी मिलता है । महान संघर्ष के फलस्वरूप जीवन शक्ति के रूप में जिस नई चेतना का अभ्युदय हुआ, उससे कला और सौन्दर्य-दर्शन में नए आयाम जुड़े । (1) पुराने प्रगतिशीलों का "शोषित जन से भावात्मक लगाव कलात्मक सौन्दर्य की आंच में कम पका था, जबकी बाद के जन प्रतिबद्ध कवि कविता के आंतरिक सौन्दर्य की उपेक्षा नहीं कर रहे है । (2)

सूर्योदय
औचक से घट जाने वाली
अनायास घटना नहीं
क्षण - क्षण
टूटना है अंधेरों का,
तार - तार
बूंद - बूंद
घुलना है चुपचाप
कटना है उजास का ।

उत्तरार्द्ध - 14 में प्रकाशित मनमोहन की "सूर्योदय" कविता "अंधेरे" और "उजास" के ऐंटीथीसिस के संघर्ष और उसकी गुणात्मक परिणति सूर्योदय को द्वन्द्वात्मक तरीके से व्यक्त करती है और इसी प्रक्रिया में बिंब और प्रतीकों का सार्थक प्रयोग करती हुई अपनी अर्थवत्ता खोलती है । (3)

कथा-साहित्य में भी धरती से जुड़े प्रतिबद्ध साहित्यकार, जिनकी उस बीच योजनाबद्ध तरीके से उपेक्षा की जाती रही, पुनः प्रतिष्ठित हुए ।

---

(1) महेन्द्र नेह, उत्तरार्द्ध - 4 पृ॰ ।
(2) चंचल चौहान, जनवादी समीक्षा, पृ॰ 187
(3) चंचल चौहान, जनवादी समीक्षा

इस छोटे से अंतराल में सन् 66 के बाद हुए राजनीतिक परिवर्तनों को स्वर देते हुए अनेक पुराने लेखकों ने तथा सर्वथा नए लेखकों ने अनेक सार्थक कृतियां दीं । कर्मभूमि, गोदान - प्रेमचंद की इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए - अमृत और विष, आधा गांव, अलग-अलग वैतरणी, धरती धन न अपना, मुरदाघर, कभी ने छोड़े खेत आदि उपन्यास मिलते हैं ।

हिन्दी कहानी के विकास में "कहानी" तथा "नई कहानियां" पत्रिकाओं के बाद "कथा", लहर, उत्कर्ष, लघुकथा आदि विभिन्न पत्रिकाओं ने योग-दान दिया । अपने समय की अनेक बहुचर्चित कहानियां इन पत्रिकाओं में प्रका-शित हुई - नीली झील (कमलेश्वर) [1] अंधेरों के बीच (राम नारायण शुक्ल) [2] रक्तमान (बुद्धनाथ सिंह) [3] मित्रो मरजानी (कृष्णा सोबती) [4] ।

"नई कहानियां" का नवलेखन अंक (अप्रैल 64) विदेशी कहानी विशेषांक (मई 69) तथा नई कहानियां विशेषांक (तीन अंक-जन॰फर॰ तथा मार्च 65) प्रकाशित हुए "उत्कर्ष" ने तीन कहानी विशेषांक (अगस्त, सितं॰ अक्टू॰ 65) में छापे । लहर का कहानी अंक नवंबर-दिसं 65 में छपा ।

निकष, हंस, संकेत, लहर ने सन् 60 से पहले तथा "वातायन" नई कहानियां उत्कर्ष, शताब्दी ने लगभग सन् 65 तक हिन्दी कहानी का प्रयास अपने-अपने स्तर पर किया ।

सातवें दशक में, साठोत्तरी, अकहानी, संचेतन कहानी, समांतर कहानी आदि को विभिन्न कथांदोलनों के शांत हो जाने के बाद "जनवादी - कहानियों" को लघु पत्रिकाओं के माध्यम से आंदोलनकारी रूप देने का प्रयास किया गया ।

रेणु की कहानी तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम पटना से अपरंपरा प्रकाशित पत्रिका में पहली बार देखने को मिली । "मंटो मेरा दुश्मन" पुस्तक

---

1,2,3, नई कहानियां 1960
4 वातायन जुलाई 63

को लेकर "नयापथ" में एक रोचक बहस चली । इस बहस की एक खूबी यह थी कि उर्दू के श्रेष्ठ लेखक मंटो के जीवन, कृतित्व और व्यक्तित्व के कई पहलू उजागर हुए । इस बहस से हिन्दी के पाठकों को उर्दू के गद्य को निकट से जानने और समझने का भी मौका मिला । जबलपुर से प्रकाशित "वसुधा" में मुक्तिबोध की "डायरी" प्रकाशित हुई, जो हिन्दी को "वसुधा" की महत्वपूर्ण देन है । §1§

साहित्येतर विषयों पर भी लघु पत्रिकाओं ने अनेक महत्वपूर्ण वैचारिक विषयों पर लेख प्रकाशित कर-कला और संस्कृति के विभिन्न रूपों का अपने पाठकों को परिचय दिया । "बिन्दु" के एक अंक में शिक्षा और नव उपनिवेशवाद, पिलिप टी॰ अल्टबाख, का लेख प्रकाशित कर, उपनिवेशवाद के उस रूप का संकेत किया जो शिक्षा के नाम पर फैलाया जा रहा है । उपनिवेशवादी तत्व ऐसी शिक्षा को बढ़ावा दे रहे है जो अविकसित देशों के मस्तिष्क को एक नये किस्म की गुलामी की ओर ले जा रहा है ।

"समयांतर" §78§ के अंक में - नव औपनिवेशिक सांस्कृतिक बेड़ियाँ और मुक्ति का सिनेमा शीर्ष लेख प्रयोगात्मक तथा क्रांतिकारी सिनेमा तथा मनोरंजन की राजनीति में अंतर स्पष्ट करता है ।

अल्पकाल में ही इन जनवादी पत्रिकाओं को अनेक बहुमुखी उपलब्धियाँ हुई है । इन पत्रिकाओं से जो वैचारिक बहसें चली वे न केवल पिछले दशकों की साहित्यिक गतिविधि की परिचायक है बल्कि साहित्यों और राजनीति से संबंधित अनेक प्रश्नों पर स्थायी महत्व की वैचारिक सामग्री भी प्रस्तुत की है जिससे रचना और आलोचना को बहुत बल मिला ।§2§ नयी कविता को प्रतिबद्ध कविता की मंजिल इन्हीं पत्रिकाओं के माध्यम से पहुंची । गीत, गजल और लोकगीतों को नया रूप और संस्कार देकर उन्हें जनांदोलनों के लिए उपयोगी बनाने

---

§1§ धर्मेन्द्र गुप्त, आलेख - 72 पृ॰ 31।
§2§ रमेश उपाध्याय, जनवादी साहित्य के दस वर्ष, पृ॰ 34

में सफल हुई । नौटंकी जैसे लोकप्रिय नाट्यरूपों को जननाट्य में रूपांतरित कर नुक्कड़ नाटकों की नयी परंपरा की शुरुआत की । राजनीतिक लेख, टिप्पणी, साक्षात्कार, परिचर्चा, पत्र, संस्मरण आदि विभिन्न विधाओं का विकास किया और इस सबसे अधिक महत्वपूर्ण साहित्यिक भाषा और जन भाषा के अंतराल को मिटा, भाषा को नया जनवादी संस्कार प्रदान कर, साहित्य को जनसाहित्य बनाने की सुगांतर कारी भूमिका का निर्वाह किया ।

लघु पत्रिकाओं की यह उपलब्धियां हिन्दी साहित्य के विकास के लिए ही नहीं, स्वयं लघु पत्रिकाओं के आंदोलन को चिरस्मरणीय बनाने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है ।

**********

सन् 1950-1980 के दौरान प्रकाशित हुई साहित्यिक पत्रिकाओं की प्रस्तुत सूची विभिन्न पुस्तकों और पत्रिकाओं से प्राप्त सूचना तथा संदर्भों के आधार पर तैयार की गई है । संपादक व स्थान के नाम,प्रकाशन-अवधि आदि के बारे में कुछ पत्रिकाओं के संपादक तथा साहित्यकारों ने भी मदद की । यद्यपि पत्रिका से संबंधित अधिकाधिक सूचनाएं देने का प्रयास किया गया है किन्तु अधिकांश पत्रिकाओं के"प्रकाशन-वर्ष"संबंधी प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध न होने के कारण, इसमें सुधार की गुंजाइश भी रह जाती है । इस सूची के " पूर्ण " होने का दावा भी नहीं किया जा सकता है ।

(सूचना का क्रम: पत्रिका का नाम, संपादक, प्रकाशन अवधि तथा विशेष सूचना (यदि हो तो) )

1· अ - अ·दे·ना·,कलकत्ता
2· अ-विधा- अवधेश कुमार, पटना
3· अब - शंकर,अभय, सासाराम(बिहार) (73)
4· अब - शंकर, धनबाद(75) पुनर्प्रकाशन
5· अर्थ - शरद, शेषमणि पांडेय, लखनऊ
6· अस्ति- मोना गुलाटी, दिल्ली
7· अभी - सुधीर सक्सेना, कानपुर(प्रवेशांक,सितं·-नव·-78)
8· अभीक- बालेन्दुशेखर तिवारी, पटना(73-74) व्यंग्य लेखन त्रैमासिक
9· अक्षर - मानिक बछावत, कलकत्ता
10· अयन भूपाल सूद, राम मिलन मिश्र, दिल्ली
11·अलख - मणि मधुकर, जयपुर
12·अथवा - सौमित्र मोहन, दिल्ली
13· अर्थात्- अक्षय उपाध्याय, कलकत्ता(74-75)
14·अणिमा- शरद देवड़ा, जयपुर (जनवरी 65-)
15·अमिता- कुमार मनोचा, लखनऊ, मासिक
16·अधुना- अचल राजपूत, दिल्ली
17· अलाव- यशोधन शुक्ल"अल्पेश" हिंडौन
18· अर्पणा- रामप्रीत उपाध्याय, कलकत्ता
19· अव्यक्त- रामप्रताप उपाध्याय, कलकत्ता
20· अंतत: - नरेंद्र जैन, राजेंद्र शर्मा, भोपाल (76-77)
21· अंतर्गत - मदन कश्यप,अनवर शमीम, धनबाद (80)
22· अंक - लक्ष्मीकांत सरस, मद्रास
23· अंतर - श्याम नारायण, दिल्ली/(कानपुर)
24· अंतराल- नचिकेता, रमेश रंजक, पटना
25· अंतर्यात्रा- ओम प्रकाश, कृष्ण कमलेश, भोपाल

26• अन्यथा- अलख नारायण, कलकत्ता
27• अन्यथा- शांति सुमन• मुजफ्फरपुर
28• अनास्था- देवेन्द्र उपाध्याय
29• अनाहूत - ललित शुक्ल, दिल्ली [77 में पुनर्प्रकाशन]
30•अन्वेषणा -कृष्ण चन्द्र शास्त्री, उदयपुर
31• अनुवाक्- बचनदेव कुमार, रांची
32• अव्यक्त- तारक, सुरेन्द्र निर्मम, हिमकर, कलकत्ता [73]
33• अस्वीकार- जयनारायण, कलकत्ता
34•अभिव्यक्ति- गिरीश अश्क, आगरा [79]
35• अभिव्यक्ति- शिवराम, चंद्रमोहन, बारा[कोटा, राजस्थान] [76-77]
36• अभिव्यक्ति-वृजेन्द्र कौशिक, कोटा
37• अभिव्यक्ति -सुधीर सक्सेना, नागपुर
38• अभिरूचि - डा• विद्या निवास मिश्र
39• अभिकल्प -शंभुबादल, रांची
40• अभिव्यंजना- मीरा सिन्हा, हावड़ा
41• अवकाश -सुरेन्द्र द्विवेदी, अशोक कालरा, इलाहाबाद[72-73]
42• अचानक -शैलेन्द्र सुमन, रक्सौल [बिहार]
43• अप्रस्तुत -नवल, कलकत्ता
44• अप्रमेय - आनंदपाल सिंह, गाजियाबाद, त्रैमासिक
45• अहसास -शरण श्रीवास्तव, जयपुर
46• अतिरेक- सुरेश पांड्येय, मथुरा
47• अकविता -जगदीश चतुर्वेदी, दिल्ली
48• अर्धसत्ता- रामसरण जोशी, जयपुर
49• अरूणाभ - प्रो0 रामनिवास "मानव" पानीपत, त्रैमासिक
50• अग्रगामी-राम रतन नीरव, जयपुर
51• अगली कविता - ओमानंद रू• सारस्वत, जयपुर/ ગુજરાત
52• अग्नि रेखा- राम मिलन द्विवेदी, बहराईच [उ•प्र•]
53• अप्रत्याशित- अक्षय उपाध्याय, कलकत्ता
54• अस्तित्व - गजेन्द्र तिवारी, मुजफ्फरपुर
55• अतिमर्श - नरेन्द्र कोहली, दिल्ली [73]
56• अनुभूति - चंद्रशेखर औदीच्य, हिंडौन [राज•]
57• अपरंपरा -नर्मदेश्वर, रमाशंकर, राजेन्द्र किशोर, वाराणसी
58•आवाम - मित्र - अलीक, पारस सकलेचा, रतलाम
59• आद्यंत- कार्तिक नाथ, गौरी नाथ ठाकुर, संथाल परगना [बिहार]
60• आइना- राजेन्द्र प्रसाद सिंह मुजफ्फर पुर [77-78]

61. आवाज - श्रवण कुमार, हावड़ा
62. आदमी - नरेन्द्र मौर्य, हरदा (म.प्र.) त्रैमासिक
63. आकंठ - हरिशंकर अग्रवाल, पिपरिया
64. आमुख - कंचन कुमार, वाराणसी (68)
65. आयाम - ओमानंद रू. सारस्वत, चंडीगढ़
66. आरती - रोशन उत्पल, इंदौर
67. आवेग - प्रसन्न ओझा, रतलाम (79-80)
68. आवेश - अचला शर्मा, रमेश बक्षी, दिल्ली
69. आवंतिका- लक्ष्मी नारायण सुधांशु
70. आरंभ - विनोद कुमार भारद्वाज, लखनऊ (66)
71. आकृति - रणधीर सिंह परमार, चौबीस परगना (प.ब.)
72. आकल्प - भोलानाथ यादव, बम्बई
73. ओर - विजेन्द्र ठाकुर, भरतपुर (70) त्रैमासिक
74. ओरांग-उटांग - उपेन्द्र पंत, श्याम किशोर, प्रमोद त्रिवेदी उज्जैन
75. इदम् - गोविंद प्रसाद, दिल्ली (79-80)
76. इकाई - मनहर चौहान, दिल्ली (67)
77. इयत्ता- नंदकिशोर तिवारी, सासाराम
78. इसलिए - राजेश जोशी, भोपाल (77)
79. इसबार -मधुकर सिंह, आरा
80. इबारत- रमेश शर्मा रतलाम (76)
81. इतरेतर -श्रीनिवास, त्रिलोचन शास्त्री, पटना (72-73)
82. इंगित - जहीर कुरेशी, ग्वालियर (68-78)
83. इंदीवर - रघुनाथ प्रसाद घोष , भागलपुर
84. इंदु-प्रभा - स्वतंत्र चौहान, रायबरेली, मासिक

85. उरेह - पांडेय कपिल, पटना
86. उपक्रम - रमेश शर्मा, जय प्रकाश, राजेन्द्र प्रसून, रतलाम, त्रैमासिक
87. उत्कर्ष - गोपाल उपाध्याय, लखनऊ (68) सचित्र पत्रिका
88. उत्तर - अशोक बच्चन, मिर्जापुर, अनियतकालीन
89. उत्तरार्द्ध -वृजेन्द्र कौशिक, राजमणि, कोटा, सव्यसाची, मथुरा (72 से अब तक) अनियतकालीन
90. उत्तर गाथा - सव्यसाची, मथुरा (79से अब तक) अनियत कालीन, त्रैमासिक
91. उत्तरशती - खगेन्द्र ठाकुर, पटना (71) अर्धवार्षिक
92. उदाहरण - रघुराज सिंह, रामपुर
93. उदाहरण - प्रताप नारायण वर्मा, कन्नौज
94. उद्धृत - श्रीराम शुक्ल , लखनऊ

95• उपलब्धि – बीरेन्द्र त्रिपाठी, दिल्ली

96• एकांत – श्यामनारायण बैजल, बरेली

97• ऋतुजा – साधना गुप्त, दिल्ली (74)
98• ऋतुचक्र – विक्रम कुमार, इंदौर (77)

99• क्यों – मोहन श्रोत्रिय, स्वयं प्रकाश, ब्यावर (राजस्थान (72-76) अनि•
100• क ख ग – राम स्वरूप चतुर्वेदी
101• कवि – भीष्मचन्द्र शर्मा, वाराणसी (विष्णुचंद्र शर्मा) '54)
102• कविता – नलिन त्रिलोचन शर्मा
103• कविता – भगीरथ भार्गव, अलवर (66-67)
104• कविता – जयसिंह, वीर सक्सेना, जगमुंदिरतायल, अलवर
105• कहानी – श्रीपत राय, इलाहाबाद (54) मासिक ("54 से पुनर्प्रकाशन)
106• कृति – चेतन आर्य, महासमुन्द (म•प्र•)/1959
107• कथा – मार्कण्डेय, इलाहाबाद (75)
108• कथन – रमेश उपाध्याय, दिल्ली (जुलाई अगस्त"80-अब तक)
109• कथानक– सुनील कौशिक, कानपुर (79)
110• कथा-कहानी– मधुकर सिंह, आरा
111• कहानीकार – कमलगुप्त, बनारस '68'
112• कथ्य – राणा प्रताप सिंह, पटना
113• कथ्य-परिवेश – केशव सिंहल, जयपुर
114• कलम – चंद्रबली सिंह, कलकत्ता (79) त्रैमासिक
115• कदम – कुमार वृजेन्द्र, कलकत्ता (80)
116• कंक – निर्मल शर्मा, रतलाम (दिसम्बर 71 से अब तक)
117• कंवल कलश – वाराणसी, साप्ताहिक
118• कल्पना – बदरी विशाल पित्ती, हैदराबाद
119• कविताश्री – नलिनी कांत, बर्दवान
120• कथा- प्रतिमान – श्याम किशोर, चन्द्रमोहन, दिनेश, शाहजहांपुर (80)
121• कथा-स्वर– अशोक टंडन, फैजाबाद
122• कथा-यात्रा– जितेन्द्र, बंबई, (78) मासिक
123• कथाबिंब – मंजुश्री, बंबई (78-80)(पहले "सृजन" नाम से प्रकाशित)
124• कथा बोध – आलोक, शैवाल, पटना
125• कथा भारती – महेन्द्र कार्तिकेय, बंबई
126• कृति परिचय– ललित कुमार श्रीवास्तव, जबलपुर

| | | |
|---|---|---|
| 127. | कलादीप | विष्णु सक्सेना, पिंजौर |
| 128. | कृत संकल्प | वाल्कर तरूण, पटना |
| 129. | कथालोक | हर्षचंद, दिल्ली [68] |
| 130. | कात्यायनी | अश्विनी कुमार, लखनऊ [69" कहानी प्रधान सचित्र मासिक |
| 131. | कालपत्र | नीलम सिंह, दिल्ली [75] |
| 132. | काल चेता | दर्द कानपुरी, उन्नाव |
| 133. | काल बोध | यादवेन्द्र शर्मा, चन्द्र, बीकानेर [जून 79, प्रवेशांक] त्रैमासिक |
| 134. | काल घोषणा | नरेश चन्द्र, पुष्प, लखनऊ [79] त्रैमासिक |
| 135. | किनार | ललित कार्तिकेय, सोनीपत |
| 136. | केतन | सुरेश किसलय, दिल्ली |
| 137. | कैक्टस | राही शंकर, हावडा |
| 138. | कोशा | विजय अमरेश, पटना, |
| 139. | कैमूर | प्रियदर्शी, राजेश, सासाराम [74] |
| 140. | कलयुग | |
| 141 | कथांतर | |
| | | |
| 142. | गंतव्य | अखिलेश्वर झा, दिल्ली [72] |
| 143. | गवाह | भगवान दास शर्मा, औरंगाबाद [अक्तू, दिसंबर-77 प्रवेशांक] त्रै0 |
| 144. | ग्रहण | श्रीराम मीना, छिंदवाडा [ मध्य प्रदेश] अनियतकालीन |
| 145. | ग्राल्पभारती | आर0 सी0 सिंह, कलकत्ता |
| 146. | गोधूलि | ऋषिकेश श्रीवास्तव सुलभ, पटना [75] [76] तीन अंक |
| | | |
| 147. | चिति | नंद किशोर आचार्य, बीकानेर |
| 148. | चित्रेतन | जयंती सिंह राठौर, पटना [ 72-76] |
| 149. | चौराहा | महाप्रकाश, मुंगेर |
| 150. | [illegible]जमीन | पवन कुमार मिश्र, प्रमोद त्रिवेदी, उज्जैन । |
| 151. | ज्योत्सना | शिवेन्द्र नारायण, पटना [48-76] |
| 152. | जनभारती | लाल बहादुर सिंह, कलकत्ता |
| 153. | जन-सृजन | विनय श्रीकर, लखनऊ |
| 154. | जागृति | फूलचन्द मानव, चंडीगढ [मासिक] |
| 155. | ठिकठिकर | भंवर शर्मा, ब्यावर [राजस्थान] |
| 156. | | |
| | | |
| 156. | तत्पर | प्रयास जोशी, भोपाल [80] अनियतकालीन |
| 157. | तत्काल | राजकुमार, लखीसराय |
| 158. | तनाव | हरिशंकर अग्रवाल पिपरिया [68] |
| 159. | तनाव | वंशी माहेश्वरी, पिपरिया [आकंठ का नया नाम] |

160. तटस्थ – कृष्ण बिहारी सहल, पिलानी
161. तरूण-मन – नारायण देसाई, कुमार प्रशांत, वाराणसी
162. तरूणराष्ट्र –कृष्ण कुमार चंचल, लखनऊ
163. तरूणोत्कर्ष – सतीश सक्सेना, जयपुर
164. तारिका – सुभाष बंसल, अंबाला छावनी
165. ताम्रपर्णी – अजय प्रसून, लखनऊ, त्रैमासिक
166. तेवर – गोविंद द्विवेदी, सागर
167. तेवर – सुरेश शशि, दिल्ली
168. तैयारी– सूर्यकांत, दिल्ली
169. तरंगिनी–

170. दंश – अलख नारायण, सूर्यदेव शास्त्री, कलकत्ता
171. दर्पण – श्याम श्रेष्ठ, हावड़ा
172. दृष्टि – वीरेन्द्र प्रताप सिंह, मुजफ्फरपुर
173. दस्तावेज– विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, गोरखपुर
174. दस्तावेज – अकुलेश परिहार, रानी खेत
175. दिशा – प्रभात सरसिज, मुंगेर
176. दिशाबोध –दिविक रमेश, दिल्ली (जून–78 प्रवेशांक)
177. दिशा बोध–प्रहलाद सिंह, भरतपुर
178. दिशावाहक– रवेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ, लखनऊ
179. दीप – हर्ष अरोड़ा, कलकत्ता
180. दीपन – रमेश मालवीय, कटनी (म.प्र.)
181. दीपशिखा– कृष्ण अरोड़ा, कैथल
182. दीर्घा –विनय नरेन्द्र वशिष्ठ, मुजफ्फरपुर
183. दीपशिखा– महावीर प्रसाद जैन, दिल्ली
184. द्वाभा- रामेश्वर प्रशांत, मुंगेर 1968

185. धरती – शैलेन्द्र सिंह, विदिशा
186. धरातल – अयोध्यानाथ शांडिल्य, नालंदा (77–83)
187.

187. न – लखनऊ, सुशील कुमार
188. नया–मंजुला सिंह, पटना (71) अर्धवार्षिक
189. नवागत– नीलम श्रीवास्तव, कोन्नगर
190. नई कहानी– सतीश जमाली, इलाहाबाद (77)

191. नई कहानियां - अमृत राय, इलाहाबाद, [मई 1960] मासिक
192. नई धारा - उदयराज सिंह, पटना [51-83]
193. नये विज्ञापन- रावी, आगरा, मासिक
194. नटरंग - नेमीचंदजैन, दिल्ली [जनवरी'65] त्रैमासिक
195. नवतारा - भारत यायावर, वाराणसी, [जनवरी'80-प्रवेशांक]
196. नया प्रतीक -स.ही.वात्सयायन, दिल्ली [74]
197. नगर वधू- शिवकुमार दीक्षित, कानपुर
198. निकेत - धर्मेंद्र गुप्त, दिल्ली [70]
199. निकष - जगदीश, नलिन, मुजफ्फरपुर [57-63]
200. निष्कर्ष - विनोद, शैलेंद्र,अश्विनी, राजा खुशाल, प्रदीप, श्रीकृष्ण,गाजियाबाद[8
201. निष्कर्ष- गिरिश चन्द्र श्रीवास्तव, सुल्तानपुर [ 78-79]
202. निरंतर- नरेशचन्द्र चतुर्वेदी, कानपुर
203. निर्झर- दिनेंद्र निर्मोही, चंडीगढ [73]
204. निर्झरणी- डा. सत्येंद्र जफा, वाराणसी
205. नीरा- वसंत वसु, जयपुर
206. नीलपक्ष-के0 विक्रम, वाराणसी [68]
207. नीलमो प्रभात- डॉ. मदन मोहन गुप्ता, पटना
208. नींव के पत्थर- नरेन्द्रनाथ कैलाश चंद्र, लखनऊ, मासिक
209. नागफनी- सुरेन्द्र तिवारी, कलकत्ता ।
210. नया पत्र [ नए पत्ते ]

211. श्रमजीवी- शंभुदत्त, हावडा
212. श्रमसाधना- रामकृष्ण, तायाल, पौजी, ग्वालियर [ 79]
213. पक्ष- श्रीराम तिवारी, रांची
214. पहल- ज्ञानरंजन, जबलपुर [ 74/75]
215. पर्याय- वीरेन्द्र पार्थ, पटना
216. पहुंच- आनंद कुमार वर्मा, पटना, मासिक
217. पथिक- पवन राकेश, नैनीताल
218. परिधि- होतीलाल भारद्वाज, पिलानी
219. पश्यंती-प्रभाव कुमार वंद्योपाध्याय, अमृता भारती, दिल्ली [78]
220. पश्यंती- प्रभात मित्तल, हापुड [77-78]
221. पहचान- अशोक वाजपेयी, जबलपुर, अनियतकालीन सीरीज
222. पक्षधर- दूधनाथ सिंह, इलाहाबाद
223. पतझर - नरेन्द्र घायल, पटना
224. परिपत्र - कौशल किशोर, लखनऊ [77-79]
225. परिवेश - डा0 ज्ञानेन्द्र प्रताप पांडेय, गाजीपुर

226• परिवेश- काशीनाथ सिंह, वाराणसी (73/74)
227• परिवेश - कृष्णकुमार शर्मा, गाजियाबाद
228• परिभाषा- देवेन्द्र उपाध्याय, दिल्ली
229• पहचान
230• परिदृश्य-चंद्रिका प्रसाद मिश्र, कलकत्ता
231• पदक्षेप- भारत भारद्वाज, बिहार शरीफ (79)
232• प्रस्था- विजयकान्त, मुजफ्फरपुर (74-76)
233 पूर्वग्रह- अशोक वाजपेयी, भोपाल
234• पृष्ठभूमि- कृष्ण कुमार चंचल, लखनऊ पाक्षिक
235• पाटल- रामदयाल पांडेय

236• प्रवाह- पंचम, मोहन, छिंदवाड़ा (म•प्र•)
237• प्रश्न- निरंजन, तरंग, बेगुसराय (बिहार)
238• प्रकर- विद्यासागर विद्यालंकार, दिल्ली
239• प्रकर- भोलानाथ तिवारी, दिल्ली (64-72)
240• प्रयास- रामजयसवाल, अजमेर
241• प्रसंग- अनिल जनविजय, दिल्ली
242• प्रगति- विजेन्द्र, अनिल, शाहाबाद
243• प्रचेता- सुरेन्द्रनाथ तिवारी, दिल्ली (72-73)
244• प्रक्रिया- सुधा श्रीवास्तव, शारदेन्दु, अहमदाबाद
245• प्रत्युत- अमरेन्द्र भ्रमर, सासाराम
246• प्रस्थान-रामवचन राय, पटना (79)
247• प्रतिभा- महाप्रदीप, महावीर, दिल्ली ( सितंबर 76, प्रवेशांक)
248• प्रतिमान- श्याम सुन्दर घोष, गोड्डा (बिहार)
249• प्रतिमान- हृदयेश, राजेंद्र, [illegible] किशोर सेठ, शाहजहांपुर (77)
250• प्रणेता- राम प्रताप नीरज मुजफ्फरपुर
251• प्रणेता-परिवेश-राम प्रताप नीरज, मुजफ्फरपुर
252• प्रतिबिंब-एस•एन•भार्गव, भोपाल, अनियतकालीन
253• प्रतिबद्ध कविता- बलबीर सिंह, कौशल कुमारी दिल्ली (76)
254• प्रा[illegible], [illegible] अवधेश अमन, पटना
255• प्रतिबद्ध-नीरदजन वेणु, बेगुसराय (बिहार)
256• प्रारंभ- भैरव प्रसाद गुप्त, इलाहाबाद (73) दो अंक प्रकाशित हुए
257• प्रारंभ- संतोष मिश्र, आरा
258• प्रालोचन-चंचल चौहान, दिल्ली
259• प्रासंगिक- नगेन्द्र चौरसिया, इलादेसाई हावड़ा
260• प्रतिनिधि

261• फर्क- कमलेश, नई दिल्ली
262• फिर- मोहन सपरा, नकोदर [पंजाब] [79-80]
263• फिलहाल- वीरभारत तलवार, पटना
264• फौलाद- नीलकांत

265• बहस- ज्ञान प्रकाश, इलाहाबाद
266• बहस- रामवृक्ष चंद, कलकत्ता [75-79]
267• बातचीत- भारत, महेश्वर, मुंगेर [72]
268• बिंब- नंद चतुर्वेदी, उदयपुर
269• बिंदु- कृष्णारंजन, राजिम [म०प्र०]
270• बिंदु- नेम नारायण जोशी, प्रकाश, नंद चतुर्वेदी, उदयपुर (67)
271• बोध- परशुराम, पंचदेव, कलकत्ता
272• बीज-पटना
273•

273• भंगिमा- लाल बहादुर वर्मा, गोरखपुर [ 73 त्रैमासिक]
274• भूमिका- बलराम, कानपुर
275• भाषा- जगदीश चतुर्वेदी, दिल्ली, त्रैमासिक
276• भाव बोध- बिशन जी०वी०सिंह, लुधियाना
277• मंच- राकेश वत्स, अंबाला [78-79] मासिक
278• मंच- भार्गवी कृष्णास्वामी, कानपुर [71-72]
279• मंच- डा० बृजेन्द्र अवस्थी, बदायूं [ मई 79] त्रैमासिक
280• मंतव्य- हनुमंत मनगटे, छिंदवाड़ा
281• मतांतर- आनंद प्रकाश, दिल्ली
282• मणिमय- राम व्यास पांडेय, कलकत्ता
283• मधुकामिनी- जगदीश श्रीवास्तव, जबलपुर
284• मधुस्यंदी- प्रो० राम स्वरूप खरे, उरई, मासिक
285• मजदूर किसान नीति- सुनील सहस्त्रबुद्धे, चन्द्र प्रकाश, कानपुर [ पाक्षिक]
286• मिथक - सुरेन्द्र मोहन, जालंधर
287• मिनीयुग- जगदीश चन्द्र कश्यप, लुधियाना
288• मूल्यांकन- शंभुनाथ चतुर्वेदी, लखनऊ
289• मुक्तकंठ- शंकर दयाल सिंह, पटना
290• मृगनयनी- रमेश श्रीवास्तव, गया [ बिहार] त्रैमासिक
291• माध्यम- बालकृष्ण राव, प्रयाग [66]
292• मुखौटे- सलीब-युद्ध- लखनऊ, सं. उमेश, रामाश्रय सविता

293• यथार्थ- स्वप्निल शर्मा, धार [77]
294• यात्रा- अक्षय जैन, सोहन शर्मा, बंबई
295• युग- केशव पांडेय, भिलाई नगर
296• युवा-उद्भ्रांत, कानपुर [74-77]
297• युवमान- दिनेश लखपाल, दिल्ली
298• युवालेखन- कौशल किशोर, विश्व मोहन, बलिया [73]
299• युवा शिल्पी- राम विजय सिंह विकल, गोरखपुर, मासिक
300• युगबोध- प्रभाकर आर्य, हिंडौन [78]
301• युग विचार- अरुण श्रीवास्तव, गोरखपुर
302• युयुत्सा- जयंत कुमार, शलभ, कलकत्ता, मासिक [पांच अंक प्रकाशित]
303• युवराज- अशोक गुप्त, दिल्ली
304• युग चेतना- कुंवर नारायण, देवराज, कृष्णराज, लखनऊ
305• यंग-आई- अशोक लव, दिल्ली
306• यंत्रविधि और समकालीन साहित्य- संकलदीप, चंद्रिका प्रसाद मिश्र
307• युवमंच- विभूति नीरद, प्रयाग
308• युग परिबोध- आनंद प्रकाश, रमेश उपाध्याय, राजकुमार शर्मा दिल्ली

309• रचना-एस• अतिबल, के0 विक्रम वाराणसी [69]
310• रचना- रामसेवक श्रीवास्तव, हरिहर सिंह गोरखपुर
311• रचना- डा0 उमेशकुमार सिंह, अजय ब्रह्मात्मज, दरभंगा [78]
312• रमणी- जनक सचदेव, दिल्ली ।
313• रचनाकार- जवाहर आजाद, फावड़ा
314• रूपांबरा- स्वदेश भारती, कलकत्ता
315• रंगायन- महेन्द्र भानावत, उदयपुर
316• रंगभारती-शरद नागर, लखनऊ
317• रंग साधन- अनिल कुमार, मनोहर आशी, भोपाल
318• राही-राजकुमार शर्मा, शाहजहांपुर, अनियतकालीन
319• राजश्री- सुनील कुमार अकेला, आगरा
320• राष्ट्रवाणी- गो0 प0 नेने, पूना
321• रेखांकन-केशव पांडेय, भिलाई नगर
322• रेखाचित्र- नजर लुधयानवी, चंडीगढ़
323• लहर- प्रकाश जैन, मनमोहिनी, अजमेर [58]
324• लघुकथा- अश्विनी कुमार द्विवेदी, लखनऊ [75] प्रथम लघुकथा त्रैमासिक
325• लेकिन- विनय अश्क, मुंगेर, त्रैमासिक
326• लेखन- कपिल आर्य, कलकत्ता [69]
327• लोक साहित्य- राम प्रसाद दाधीच, जोधपुर
328• लोक-चेतना-डा0 लाल बहादुर दत्त, गोरखपुर [80] त्रैमासिक
329• लोक-संपर्क- जगदीश माथुर कमल, जयपुर

330• व्यंग्य- अरुण रंजन, पटना [72-73] त्रैमासिक, तीन अंक छपे
331• व्यंग्यम- रमेश शर्मा, निशिकर, श्रीराम, महेश शुक्ल, जबलपुर
332• वर्तमान- रामजी राय, उर्मिलेश, राजेन्द्र मंगज, इलाहाबाद
333• वर्तमान- गिरिजा शंकर अग्रवाल, रायपुर
334• वातायन- पूनम दइया, हरीश भादानी, बीकानेर [61-72]
335• वानर- कृष्ण बिहारी सहल, जयपुर
336• बाम- चंद्रभूषण तिवारी, आरा [72-74]
337• वाम मित्र- जनेश्वर, रतलाम
338• विदिशा- अनवर भिखारी, मुंगेर
339• विजन- राजनारायण सिंह, शाहाबाद
340• विग्रह- सतीश कुमार, दिल्ली
341• विचार- देवेश ठाकुर, बंबई
342• विभक्ति- निर्भय मल्लिक, कलकत्ता |68|
343• विध्वंस- अनय, कलकत्ता [70]
344• विध्वंस- प्रथम असंपादित जरूरतकालीन पत्रिका
345• विप्लव- केदारनाथ सिंह, पटना
346• विकेंद्र- शंभुनाथ, हावड़ा
347• विकल्प- शैलेन्द्र भाटियानी, इलाहाबाद
348• विनिमय- अनिल सिन्हा, पटना
349• विचारभूमि- हीरालाल जयसवाल, गोंदिया [ महाराष्ट्र]
350• विश्ववाणी- जगदीश बत्रा, महेश, राष्ट्रवर्धन गाजियाबाद [77]
351• वीणा- श्याम सुन्दर
352• वसुधा

353• शब्द- चंदर चौधरी, लखनऊ
354• शब्द- विनोद के0 किरी, बाराबंकी
355• शरर- पुष्पलता कश्यप, जोधपुर
356• शताब्दी- ओंकार ठाकुर, जबलपुर [69] 70|
357• शताब्दी संवाद- बेचन, भागलपुर
358• शाश्वत- धीरेन्द्र अस्थाना, देहरादून [77]
359• शालपत्र-मनमोहन, वीरभारत तलवार; धनबाद
360• शिवम्- विनोद तिवारी, चंडीगढ़/भोपाल
361• शिविर- तपन भट्टाचार्य, इंदौर [ 78]
362• शिल्पी- देवेन्द्र सुधाकर, भागलपुर
363• शिलापंख- राजेन्द्र कुमार गढ़वालिया, अलीगढ़
364• शीर्षक नहीं- डा0 शम्भुनाथ चतुर्वेदी लखनऊ
365• शून्य- नवाब सिंह राजपूत

366. शैल- बलदेव शर्मा, शिमला (75) (पुनर्प्रकाशन) 79.
367. संज्ञा- देवीप्रसाद वर्मा, रायपुर
368. संज्ञा- ज्योतिष जानी, बड़ौदा
369. संवेद- मनोरमा पांडेय, दिल्ली
370. संकेत- धीरेन्द्र नारायण सिंह, सहरसा
371. संबंध- महेन्द्र गोहिल, भावनगर (गुजरात)
372. संगीत- बालकृष्ण, हाथरस (34-79) संगीतकला का त्रैमासिक
373. संग्रह- प्रहलाद दूबे, जमशेदपुर
374. संघर्ष- कुमार दीनानाथ सिंह, गोड्डा
375. संबोधन- कमर मेवाड़ी, काकरोली (राजस्थान)
376. संप्रेषण- चंद्रभानु, भारद्वाज, जयपुर
377. संकल्प- नरपतसिंह सोढा, बीकानेर
378. संकलन- छेदी लाल गुप्त, कलकत्ता
379. संभावना- माधव मधुकर, विश्वनाथ तिवारी, गोरखपुर
380. संचेतना - महीप सिंह, दिल्ली (66 से अब तक)
381. स्थापना- शिवराम, रांची
382. स्वाधीनता- कलकत्ता (67)
383. सृजन- मंजुश्री, बंबई (78) दो अंक निकले
384. समभाव- बसंत कुमार, पटना (74-78) पांच अंक छपे
385. सतत् - हरेकृष्ण, हाजीपुर (वैशाली) (75-77) त्रैमासिक
386. समग्र- महावीर प्रसाद जैन, दिल्ली
387. सलीब- विनोद कुमार, शंकरायन, रांची
388. समीक्षा-देवेन्द्र नाथ शर्मा, गोपाल राय, पटना (68)
389. सर्वनाम- विष्णु चंद्र शर्मा, दिल्ली (72-73)
390. समवेत- अनय, सिद्धेश, कलकत्ता (79-80)
391. समवेत- प्रमोद बेड़िया, पुरुलिया (प०ब०)
392. समबेत- राजा दूबे, सिंकदराबाद
393. सनीचर- ललित कुमार शर्मा, कलकत्ता (जनवरी 57)
394. समारंभ- भैरव प्रसाद गुप्त, बंगलौर इलाहाबाद (72)
395. सप्तांशु- परमानंद गुप्त, बंगलौर
396. समकालीन- अनय, कलकत्ता
397. सत्यावर्त- दिनेश घोष, भागलपुर
398. समयांतर- भरत सिंह, दिल्ली
399. सरोकार- प्रणय रंजन तिवारी, दिल्ली
400. समांतर साहित्य- ललित मोहन, कामतानाथ, कानपुर
401. सक्रिय कहानी- राकेश वत्स, अंबाला (दिसंबर-50)

402• समीक्षा संदर्भ- श्रीमती शिरोमणि देवी, दिल्ली [77]
403• समकालीन कविता- अनिल श्रीवास्तव, इलाहाबाद
404• सर्वोदय वाणी- जगदीश बत्रा, गाजियाबाद
405• सरस्वती- निशीथ कुमार राय, इलाहाबाद [1900-80]
406• साम्य- विजय गुप्त, अंबिकापुर [मध्य प्रदेश] [78]
407• सार्थक- हरिमोहन, नरेंद्र कोहली, प्रेमजनमेजय, दिल्ली [76]
408• सामायिक- विमलवर्मा, श्रीहर्ष, कलकत्ता
409• सामयिकी- भूपेन्द्र नारायण सिंह, अविनाश, वाराणसी
410• साक्षात्कार- शानी, भोपाल
411• साहित्य- पीयूष- पुरुषोत्तम प्रशांत, हैदराबाद
412• साहित्य- निर्झर- रमेश बत्तरा, पुचंड, चंडीगढ़
413• साहित्यालोचन- मिश्रीलाल शर्मा दिल्ली [73]
414• सामयिक वार्ता- किशन पटनायक, पटना
415• समकालीन तीसरी दुनिया- आनंद स्वरूप वर्मा, दिल्ली
416• समालोचक- रामविलास शर्मा, आगरा
417- साहित्यकार- इलाहाबाद
418•- सिर्फ- नंदकिशोर नवल, पटना [70-72]
419• सिताभा- किसलय वंद्योपाध्याय, गाजियाबाद
420• सिलसिला- सुभाष पंत, देहरादून, ~~गाजियाबाद~~ [76]
421• सिलसिला- [ त्रिनेत्र जोशी, दिल्ली
422• सिंधुस्वर- कैलाशनाथ भारद्वाज, फगवाड़ा
423• सीमांत- मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, पटना [59-60]
424• सुहासिनी- सुधीर सक्सैना, दिल्ली
425• सुरभिकलश- चमन सिंह, अजमेर
426• सूत्रकार- स्नेह आत्मा, कलकत्ता, मासिक
427• सोच- म•य• दलवी, नागपुर [78]
428• सोनांचल- लालचंद, शहडोल [मध्य प्रदेश]
429• सौरभ- श्रीमती राजकमल, पटियाला
430• सीमांत- [अराधना प्रकाशन] आरा [67]
431• संक्रांति- डा० अशोक शर्मा, प्रदीप प्रशांत, अलीगढ़
432• संविधा-

433• हम- मंजुल उपाध्याय, हरिभूषण, जयपुर
434• हमारीपीढ़ी- ठाकुर प्रसाद सिंह, शिवप्रसाद सिंह, केदारनाथ सिंह [53-54] चार अंक

435. हस्तक्षेप- अर्जुन राठौर, इंदौर
436. हस्तक्षेप- ज्ञानेन्द्र पांडेय, नैनीताल [अप्रैल, जून-80]
437. हस्ताक्षर- विभुकुमार, रायपुर
438. हथियार- हावड़ा
439. हास्यम्- मुकुल उपाध्याय, बंबई
440. हास परिहास- हुल्लड़, मुरादाबाद
441. हिरावल- शिवमंगल सिद्धांतकार, दिल्ली ('75 से अबतक)
442. हिमस्नेह- गोविंद गौड़, हिमाचल प्रदेश, मासिक
443. हरकारा-

444 क्षात्र ज्ञ - दिनकर सोनवलकर, प्रसन्न ओझा, रतलाम [68]
445. क्षेत्रज्ञ- ~~दिनकर~~ सुशील शर्मा, महेन्द्र जौहरी, जयपुर

446. त्रिज्या- ललित अग्रवाल, पिपरिया
447. अनाम- गोपाल माहेश्वरी, उदयचित्र, जलपाइगुड़ी
448. अनाहूत- देवी प्रसाद पांडे, वाराणसी
449. अनुवृत्त- केनेथ एबरोज, मृत्युबोध, चंडीगढ़
450. कथालोक- महेन्द्र जैन, जयपुर
451. नवलेखन- अक्षय, शरद, घनश्याम, भोपाल [63-64]
452. रंग- रामावतार, चेतन, बंबई
453. रसवंती- प्रेमनारायण टंडन, लखनऊ
454. संविधा- रमाकांत मुकुल, छपरा [60]
455. अनन्या- प्रेमशंकर, अलीगढ़ (80)
456. अभिज्ञान- भारद्वाज, करनाल
457. आकांक्षा- सुधीर कुशवाहा, गाजियाबाद
458. आत्म विश्लेषण- अशोक कुमार, जिंद (हरियाणा)
459. कैथल दर्पण- भगवान प्रियभाषी, हरियाणा
460. जन दिशा - मनु निश्चिन्त, देहरादून
461. जीवनप्रभात- सत्यनारायण मिश्र, बम्बई
462. प्रेरणा- सीताराम सोनी, सेन्धवा (म.प्र.)
463. मधुरिमा - काशीनाथ बेलापुरे, उस्मानाबाद (महा.)
464. हमारा निशाना- हिमांशु मिश्र, इटारसी (म.प्र.)
465. हितैषी- एन.डी. चौरिया, अकोली (म.प्र.)
466 युवावाणी- तुलसीराम सुल्ताने, निमाड़ (म.प्र.)
467. युवारश्मि. अवध बैरागी, लखनऊ
468. युवा हस्ताक्षर- नमोनाथ अवस्थी, हिण्डौन
469. सृजन - रामरतन सिंह वर्मा, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)
470. समतल - रणधीर बादल, मुंगेर (बिहार)
471. सलिलम् - शिवनारायण मिश्र, छिंदवाड़ा (म.प्र.)

JOHN L. COOPER

# The Role of Little Magazines

It has been only in the last ten years or so that Little Magazines, principally pseudo-literary magazines specializing in political poetry, prose bagatelles and social critiques, have appeared all over the United States as the voice of the angry, the idealistic, and the disenchanted young. Prior to the rise of the new wave of Little Magazines, of the type just mentioned, the field was dominated by the college quarterlies and the house-organs of the most radical groups on the political spectrum, of both the right and left.

There has been no definitive analysis, to my knowledge, as to the reason why the great surge of Little Magazines occurred when it did, but just thinking back over the years to that period in the middle and late fifties, there is no question in my mind that a general state of confusion and depression had settled over the population of America. This state of confusion and depression was induced by a number of factors, and all of these factors tended to be of revolutionary, and counter-revolutionary forces. There was the Cold War and its threat of a communist world take over. The growing threat, specifically that of Red China due to the settlement of the Korean War (an Armistice instead of victory), and the negative psychological effects of this on peoples who saw themselves as members of the mightiest nation on earth. The Senator McCarthy witchhunts which produced uncomfortable, suspicious tensions within the fabric of the nation, and probably the most important factor of all, the beginning of the Negro movement for political, economic and social equality.

With these kinds of pressures bearing down on the individual, there is no wonder that the average person in America, during that period, felt confused and depressed. The people looked to the government for clarity and relief. But the government, unable to reach a consensus on the issues because of their divisive nature among the population, seem to be more confused in general than the people at large. The result was that the various governmental bodies tended to withdraw from any positive meaningful consideration of the issues and attempted to go on with "business as usual."

This position by the government pointed up rather clearly what many people, particularly the young people, had suspected, that there was indeed a vacuum between the government and the people. But more expressly, the vacuum was between the young elements in society and the older elements in the society, or between idealistic liberalism and reactionary conservatism.

The centers of power within the system and those who had vested interest in the system were reacting against the pressures for reforms. The idealistic liberal elements were reacting to the growing tide of opinions locally and internationally, that sought a more humanistic collective view of man's Social Realities. The reactionary conservative elements found their basic identities within the system. The idealistic liberal element did not wholely identify with the system. From the point of view of the existing social structure, the reactionary conservatives saw the idealistic liberals as outright communists or poor dupes of the "communist plot."

The idealistic liberals tried to initiate dialogues between themselves and the reactionary conservatives, often using extra-legal means in an effort to force the channels of communications open. But the reactionary conservatives, functioning within a psychological frame of reference of a state of low-to-high-grade paranoia, used their power and vested interest to block any meaningful dialogues between themselves and the idealistic liberals. The idealistic liberals, having tried and faild to initiate dialogues between the two groups, then sought to bypass the recognized channels of communications within the system and carry their case directly to the people in order to force change through public pressure being brought to bear on the government. Out of the actions and counter-reactions of the two groups, there developed what can be termed as the ideology of the Little Magazines, and thousands of the small periodicals sprang up across the nation.

It should be understood that the Little Magazines in the United States today, as well as the majority of them in foreign countries, by and large, are not in the traditional sense literary magazines. The ideology of the Little Magazines is committed to social, economic, and poltical change. The poetry and prose that one finds in them is primarily dialectic diatribe and bagatelles of political rhetoric placed in some artistic frame. This is not to say that some creative, artistic work has not appeared

in them. It has, but this seems to be more of accident than of purpose. The ideology of the Little Magazines is committed to social change and not to the exemplification of the artist.

As political in nature as they are, the importance of the Little Magazines should not be minimized. The importance lies in the basis for their demands, which can only be described as spiritual, *humanistic fiat*. That often their rhetorical diatribe seems to reject this is certainly true enough, but if anyone would take the time to study the many proposals for social change that appears in the Little Magazines, undoubtedly they would conclude that the ends that they seek are more humanistic than that which they want to change.

Basically then, one could say that "The Role of the Little Magazines" is that of a voice for the idealistic liberal elements within the societies, here and abroad. The Little Magazines seek to identify and expose the non-humanistic aspects of the existing social systems, and their proposals for change is based upon exposing these decadent elements.

Strictly speaking in a political sense, the Little Magazines exhibit a number of different political ideologies, but if one takes a closer look at the Mags, they will find that the true coterie element relates back to what I called spiritual *humanistic fiat*. What makes this important is that it allows these groups of varying political persuasions to realize a sense of commonality even though the mean that they choose may vary. This gives the movement a kind of unity that allows it to cut across intersectional and national boundaries.

The ideology of the Little Magazines is a world-manifestion. The idealistic liberals, in the various countries, are trying to force change. There is very much an artistic quality about the movement, brought on by its humanistic base and the involvement of many of the best, young, well-known artists. In the pages of these Little Magazines, very often it is the artist who is expressing the ideologisms. Two examples of this is the American poet Allen Ginsberg and the Russian poet Yevgenii Yevtushenko. These two young poets are in competing societies, yet they both are united idealistically against the reactionary conservative elements in their societies.

Idealism is proverbially a state of mind of the young and the adolescent. The reasons for this seem to be more psychological than sociological, but in terms of the social realities of the day, the idealistic quest of the young finds its means in the political process. Historically, idealism of the very young group has had to deal with an entrenched minority when seeking social change. From the point of view of the individual who sought the change, this entrenched minority appeared to be the entrenched majority. With the growth of the Little Magazines, and the development of the coterie of ideologisms, these young people now know a commonality in spirit and purpose with thousands of others like themselves. This sense of commonality cannot help but give strength to the idealistic liberal forces.



In such a short paper, my attempt here was to give only the broadest frame of reference of the "Role of the Little Magazines." If one understands that the Little Magzines are speaking for the idealistic liberal elements in most instances of a society, and that they are addressing themselves to the general public in hopes of exposing the non-humanistic aspects of a society, the specific details of a particular social milieu can be described in terms of the analysis one is trying to make. These liberal and conservative elements occur at all levels of any society and they occur in every institution of every society. The Little Magazines are attempting to expose those elements which are generically non-humanistic in their means or their ends.

Friction between conservative and liberal elements of a social system have been occurring throughout man's history. With the rise of the Little Magazines, the liberal elements (progressive liberalism as opposed to liberalism within the status quo) have strengthened their forces, hardly to the degree that they offer a major threat to the conservative elements, but to the degree that the conservative elements can no longer ignore and stifle the voices of change. The government and the various policy making bodies must now make decisions with an eye to the future and an ear to the rising voice of idealistic liberalism. As the situation is presently constituted, this means listening to the *philosophy* of the Little Magazines.

□□ लघुपत्रिका प्रदर्शनी '६८, के लिए, रमेश बक्षी द्वारा प्रकाशित पुस्तिका में छपा लेख।

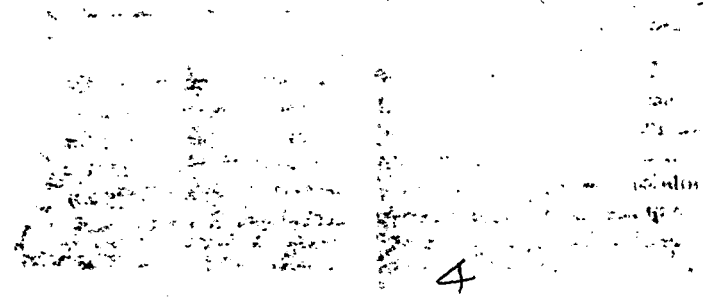

## सहायक - पुस्तक सूची


1. श्रीपाल शर्मा : "हिन्दी पत्रकारिता:राष्ट्रीय नव वद्द बोधन", 1978 राजपब्लिशिंग हाउस दिल्ली ।
2. डा. रत्नाकर पाण्डेय : "पत्रकार प्रेमचंद और हंस" 1978 राजेश प्रकाशन दिल्ली।
3. प्रेमचंद : "प्रेमचंद के विचार" (भाग I II III) 1982, सरस्वती प्रेस, दिल्ली
4. राम विलास शर्मा : "भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा, 1975
5. " "महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण", 1978
6. " "नयी कविता और अस्तित्ववाद" 1978 (सभी) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ; पटना ।
7. रेखा अवस्थी : "प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य", 1978 मेकमिलन, दिल्ली
8. ए.आर. देसाई : "भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि," 1977 दिल्ली
9. " "भारतीय राष्ट्रवाद की अधुनातन प्रवृत्तियां", 1978 दिल्ली
10. विप्लवदास गुप्त : नक्सलवादी आंदोलन, 1981 दिल्ली
11. डा. श्याम परमार : अकविता और कला संदर्भ, 1968 कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर
12. ई.एम.एस. नम्बूदिरिपाद : "समकालीन भारत : सर्वग्रासी संकट," 1982 नेशनल बुक सेंटर, दिल्ली
13. चंचल चौहान : "जनवादी समीक्षा - नया चिंतन, नया प्रयोग" 1979 पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली
14. डेविड सलबोर्न - "एनआई टू इंडिया" 1977 पैंग्विन, न्यू यार्क ।
15. "जनवादी साहित्य के दस वर्ष" 1978, जनवादी विचार मंच, द्वारा प्रकाशित


## पत्रिकाओं के महत्त्वपूर्ण अंक


उत्तरार्द्ध - 20, अक्तूबर 1982 "जनवादी साहित्य विशेषांक" सं. सव्यसाची मथुरा ।

संचेतना 43 - 44, "लेखक और अभिव्यक्ति की स्वाधीनता" (विशेषांक) 1977, सं. महीप सिंह, दिल्ली

आवेश 72, सं. रमेशबक्षी, अचला शर्मा, दिल्ली

सनीचर, मई "69 ललित शुक्ल, कलकत्ता"

शोध प्रबंध - "नए काव्यांदोलनों के विकास में पत्रिकाओं का योगदान (1940-1960)" सरिता सिंह, दिल्ली विश्वविद्यालय (अप्रकाशित)

लघु शोध प्रबंध - "सातवाँ दशक और राजकमल चौधरी" - सुरेश बाफना, 1981 जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (अप्रकाशित)

## विषय से संबंधित महत्वपूर्ण लेख

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना "छोटी पत्रिकाएं-बड़े सवाल" दिनमान 18 अगस्त 74
2. राम स्वरूप चतुर्वेदी, "हिन्दी की लघु पत्रिकाएं" कल्पना (114) अक्तूबर 60
3. "लघु पत्रिकाएं - एक दशक के बावजूद" आजकल फरवरी 79
4. सव्यसाची "हिन्दी की वामपंथी पत्रिकाएं और उनकी भूमिका" मुक्तधारा, दिसम्बर 73
5. सव्यसाची "अप्रत्याशित के संदर्भ में छोटी पत्रिकाओं पर पुनर्विचार" संबोधन
6. भीमसेन त्यागी "छोटी पत्रिका की भूमिका" नई धारा
7. निवास शर्मा "पत्रिकाओं की भीड़ में सही विकल्प की खोज ; सामयिक
8. सर्वेश्वर "लघु पत्रिकाएं - महत्वाकांक्षाएं" दिनमान (आरंभिक अंकों में)
9. नीलम श्रीवास्तव "लघु पत्रिकाओं को जन पत्रिकाएं बनाया जाए" उत्तरार्द्ध
10. विजेन्द्र अनिल "छोटी पत्रिकाओं की अनार्थिक समस्याएं" युवालेखन
11. धर्मवीर भारती "चिकनी सतहें : बहते आंदोलन" सारिका, मई 67
12. धर्मवीर भारती "छोटी पत्रिकाएं, बड़ी पत्रिकाएं और साहित्यिक संसार," अंकन ; मार्च 75
13. रामदरश मिश्र "विद्रोह विद्रोह विद्रोह, लेकिन किसके लिए" धर्मयुग, दिसंबर 66